सत्य धर्म प्रवेशिका

(१ से ५००)

जो जीव, राग-द्वेषरूप परिणमित होने पर भी मात्र शुद्धात्मा में (द्रव्यात्मा में = स्वभाव में) ही 'मैंपन' (एकत्व) करता है और उसी का अनुभव करता है, वही जीव सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दर्शन वैराग्यादि योग्यताओं के बिना प्राप्त नहीं होता।

लेखक – C.A. जयेश मोहनलाल शेठ
(बोरीवली) B.Com., F.C.A.

नमस्कार मंत्र–अर्थसहित

णमो अरिहंताणं	– त्रिकालवर्ती तीर्थंकर प्रमुख अरिहन्त भगवन्तों को समय–समय की वन्दना होओ!
णमो सिद्धाणं	– त्रिकालवर्ती सिद्ध भगवन्तों को समय–समय की वन्दना होओ!
णमो आयरियाणं	– त्रिकालवर्ती गणधर प्रमुख आचार्य भगवन्तों को समय–समय की वन्दना होओ!
णमो उवज्झायाणं	– त्रिकालवर्ती उपाध्याय भगवन्तों को समय–समय की वन्दना होओ!
णमो लोए सव्व साहूणं	– त्रिकालीवर्ती साधु भगवन्तों को समय–समय की वन्दना होओ!
एसो पंच नम्मोकरो	– यह पंच नमस्कार मन्त्र,
सव्व पाप पणासणो	– सब पापों का नाश करनेवाला है
मंगलाणं च सव्वेसिं	– सर्व मङ्गलों में
पढमं हवई मंगलं	– उत्कृष्ट मङ्गल है।

पंच परमेष्ठी वंदन श्लोक

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम्

ॐ श्रीमहावीराय नमः

सत्य धर्म प्रवेशिका

(१ से ५००)

लेखक

CA **जयेश मोहनलाल शेठ** (बोरीवली)

B.Com., F.C.A.

सम्पादन : **मनीष मोदी**

अर्पण

माता– **पूज्य कान्ताबेन** तथा

पिता – **पूज्य स्वर्गीय मोहनलाल नानचन्द शेठ**

तथा

भाई – **श्री रश्मिनभाई मोहनलाल शेठ** को

जो जीव राग–द्वेष के परिणमित होने पर भी मात्र शुद्धात्मा से (द्रव्यात्मा से = स्वभाव से) ही 'मैंपन' (एकत्व) करता है और उसी का अनुभव करता है, वही जीव सम्यग्दृष्टि है। यही सम्यग्दर्शन की विधि है।

प्रकाशक : **शैलेश पूनमचन्द शाह**

www.jayeshsheth.com

ॐ श्रीमहावीराय नमः

सत्य धर्म प्रवेशिका

१. हमने अनादि से ग़लतफ़हमी की वजह से कुछ करने के जोश में ज़्यादातर चारित्र मोह पर काम किया है। और दर्शन मोह, जो कि संसार बढ़ाने का कारण है, को वैसा का वैसा छोड़ दिया। इसीलिये आज तक हम संसार में भटक रहे हैं।

२. हमें सबसे पहले होश में आकर दर्शन मोह के उपर सम्यक् प्रकार से 'सम्यग्दर्शन की विधि' पुस्तक में दर्शाये गये ढंग से आत्मप्राप्ति के प्रयत्न करने चाहिये।

३. धर्म के अनुकूल संयोग पुण्य से मिलते हैं । परन्तु धर्म में रुचि पुण्यानुबन्धी पुण्य के उदय से ही होती है। जो पुण्य धर्म का मार्ग प्रशस्त नहीं करता वह पुण्य पापानुबन्धी है।

४. हमें यह सदैव याद रखना है कि दूसरों को दु:खी करने का भाव नियम से भविष्य में हमें ही दु:खी करेगा।

५. सत्य धर्म अपने भावों पर निर्भर है इसलिये हमेशा अपने भाव जाँचते रहना चाहिये। हमारे भाव ही हमारे अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता हैं।

६. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें विषयों में सुखबुद्धि है तब जल्द ही बारह भावना से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

७. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें कई जीवों के प्रति रोष/क्रोध रहता है तब जल्द ही चार भावना और Thank you! Welcome! से अपने रोष का इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

८. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें धर्म के बजाय अन्य विषयों में रुचि अधिक है तब जल्द ही बारह भावना से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

९. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें अपने रूप, पद, प्रतिष्ठा या पैसे का अहंकार है तब जल्द ही बारह भावना से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

१०. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें दूसरों में सिर्फ़ बुराइयाँ दिखती हैं, उनमें कुछ भी अच्छाई नज़र नहीं आती तब जल्द ही बारह भावना और चार भावना से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

११. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें दूसरों की उन्नति से जलन होती है तब जल्द ही यूनिवर्सल लॉ से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

१२. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें अपनी ज़रूरत से ज़्यादा पैसे कमाने का भाव है तब जल्द ही बारह भावना से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

१३. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें चोरी करने का भाव है तब जल्द ही यूनिवर्सल लॉ से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

१४. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें यह भव रोग बन्धन-रूप नहीं लगता है तब जल्द ही बारह भावना से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

१५. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें अधिक से अधिक खाने का भाव है तब जल्द ही बारह भावना से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

१६. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें अपनी सेहत के लिये हानिकारक चीज़ें खाने का या पीने का भाव है तब जल्द ही बारह भावना से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

१७. जिसे सचमुच सुखी होना है उसे 'सम्यग्दर्शन की विधि' पुस्तक का सम्यग्दर्शन के लिये योग्यता' वाला प्रकरण अवश्य पढ़ना चाहिये क्योंकि योग्यता बन गयी तो फिर सम्यग्दर्शन बहुत ही क़रीब है। और सम्यक्त्व तो अनन्त सुख पाने का द्वार है।

१८. आम लोग भूत और भविष्य की चिन्ता में ही व्यस्त रहते हैं और इसलिये अपने वर्तमान का सही उपयोग नहींकर पाते। जिसे आत्मप्राप्ति हुई है वह अपने अस्तित्व को वर्तमान में ही अनुभव करके वर्तमान को सुहाना बना लेता है। उसका भविष्य भी अनन्त सुखमय होता है।

www.jayeshsheth.com

१९. मोह दो प्रकार के हैं; चारित्र मोह और दर्शन मोह। चारित्र मोह अपेक्षाकृत कम दु:ख देता है। दर्शन मोह अनन्त दु:ख देता है। उससे बचने का एक ही मार्ग है - आत्मानुभूति, सम्यग्दर्शन।

२०. हमें अपने भावों को हर घण्टे या हर दो-तीन घण्टे में जाँचते रहना चाहिये और उन्हें ठीक करने का प्रयास करते रहना चाहिये। अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिये जागृत रहने का सबसे आसान तरीक़ा यही है।

२१. हमें पैसे-घर-परिवार-स्वास्थ्य इत्यादि अपनी तक़दीर के अनुसार ही प्राप्त होते हैं। और तक़दीर बनाने के उपाय 'सुखी होने की चाबी' पुस्तक में बताये गये हैं।

२२. जब तक हम सुख को बाहर ढूँढेंगे तब तक न तो वर्तमान में सुख प्राप्त होगा और न ही भविष्य में। बल्कि सुख बाहर ढूँढने से हम अपना अनन्त भविष्य अनन्त दु:खमय बनाने का कार्यकर रहे हैं।

२३. हम अच्छे से पढ़कर या यूनिवर्सिटी की भारी भरकम डिग्रियाँ लेकर धर्म की प्रभावना करने हेतु अच्छे-अच्छे प्रवचन तो दे देते हैं परन्तु अगर हम ने अपना जीवन नहीं बदला और सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया, तो उन डिग्रियों से अपना कल्याण सम्भव नहीं।

२४. जब तक हमें किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय का पक्ष या आग्रह है तब तक हम निष्पक्ष सत्य धर्म नहीं पा सकते। हमारा आग्रह हमें अनेक भवों तक उसी पक्ष में जन्म दिलवायेगा।

२५. हम शास्त्र अभ्यास या प्रवचन सुनकर अपने आप को शुद्धात्मा मानने लगते हैं और समझते हैं कि अब हम कर्मों की गिरफ़्त से बच गये हैं। इस तरह हम ने अपने आप को अनन्त काल से छला है। इस भव में अपने को न छलते हुए हमें एकमात्र शुद्धात्मा का अनुभव करने के बाद ही अपने को शुद्धात्मा मानने का लक्ष्य रखना है।

२६. आत्मज्ञानी के हृदय में सबके लिये सहज करुणा वर्तती है परन्तु आम लोग अपनी आदत के अनुसार उस करुणा में भी ज्ञानी का मतलब ढूँढते हैं। ऐसा करने से उस ज्ञानी का नहीं, ऐसा सोचनेवाले का ही बुरा होता है। इसलिये हमें सावधान रहना चाहिये - इससे बचना चाहिये।

२७. आत्मप्राप्ति के लिये सबसे पहले अपने जीवन में नैतिकता, सरलता, अभक्ष्य त्याग, सप्त महाव्यसन त्याग तथा एकमेव मोक्षेच्छा होना अत्यन्त आवश्यक है।

२८. अनादि से हमने अपनी मति अनुसार ही धर्म किया होने से अथवा अपूर्ण दर्शन का अनुसरण किया होने से हमें सत्य धर्म की प्राप्ति कभी नहीं हुई। इसीलिये हम आज भी संसार में भटक रहे हैं।

२९. अब हमें सत्य धर्म को समझकर उसका अन्तःकरण से अनुसरण करना चाहिये न कि दिखावे के लिये, तभी हमारा कल्याण होगा।

३०. हमें अपनी और दूसरों की ग़लतियों से सीखकर अपने आप को हर दिन बेहतर करते रहना है।

३१. दूसरों की ग़लतियाँ देखकर उनकी निन्दा न करें क्योंकि ऐसी निन्दा से कर्मबन्ध होता है, जिससे हमें बहुत दु:ख मिलता है।

३२. हम भगवान का दर्शन-पूजन ज़रूर करते हैं परन्तु उनके बताये मार्ग पर चलने को तैयार नहीं होते। इसका कारण ढूँढना चाहिये।

३३. कषायमन्दता की स्थिति में हम कभी-कभी ठगे जाते हैं क्योंकि हम समझ लेते हैं कि हमने धर्म प्राप्तकर लिया है, जबकि धर्म तो सम्यग्दर्शन से ही प्राप्त होता है।

३४. जिन्हें दु:ख पसन्द नहीं उन्हें स्वप्न में भी पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि पाप ही दु:ख का जनक है।

३५. पाप को छोड़कर एकमात्र आत्मप्राप्ति के लक्ष्य से पुण्य भाव में रहना चाहिये क्योंकि कर्म हर क्षण बन्ध रहे हैं। वे अगर अशुभ कर्म (पाप कर्म) होंगे तो अवश्य ही दु:ख देनेवाले हैं।

३६. जिसे अन्तरंग धर्म करते वक़्त ख़ुशी मिलती है, आनन्द आता है उसके संसार का अन्त नज़दीक है ऐसा समझना चाहिये।

३७. अन्तरंग धर्म यानि अपने आप को भगवान के उपदेश के अनुसार बदलते रहने का भाव, भगवान के मार्ग पर चलने का दृढ़ निश्चय।

३८. धर्म प्रभावना करने का भाव अच्छा है परन्तु अपनी अन्तरंग गिरावट की क़ीमत चुकाकर हम प्रभावना नहींकर सकते।

३९. जब कोई पुण्य को हेय कहता है तब उसका आशय लोगों को पुण्य से हटाकर पाप में ढकेलने का नहीं होता। वह केवल यह समझाना चाहता है कि सिर्फ़ पुण्य को धर्म न मानकर एकमात्र आत्मप्राप्ति को ही उपादेय मानना चाहिये। आत्मप्राप्ति के लक्ष्य से रहना तो शुभ भाव (पुण्य) में ही है।

४०. सच्चा सुख उसे कहते हैं जिसे हम लगातार भोग सकें और जिससे हम कभी न थकें। जब हमें यह विश्वास हो जाये कि सच्चा सुख अपने अन्दर है बाहर नहीं, तभी हम उस सच्चे सुख को खोजने का प्रयास करेंगे।

४१. यदि हमें अपने अन्दर के सच्चे सुख का आभास मात्र भी हो जाये तो फिर हमें उसके पीछे भागने से कोई रोक नहीं सकता, उसकी उपासना करने से कोई रोक नहीं सकता।

४२. मैं यहाँ सिर्फ़ देने के लिये ही आया हूँ - वह भी बिना किसी शर्त या अपेक्षा के। सिर्फ़ देने से या तो हम अपना पुराना क़र्ज़ चुकाते हैं या फिर हम नयी जमापूंजी जमा करते हैं। दोनों परिस्थितियों में देने से फ़ायदा हमारा ही है।

४३. जो भी होता है, अच्छे के लिये ही होता है। इस एक वाक्य से हम पूरी तरह सकारात्मक बन सकते हैं।

४४. मुझे अपना फ़र्ज़ पूरी सच्चाई और ईमानदारी से निभाना है लेकिन दूसरों से ऐसी अपेक्षा नहीं रखनी है क्योंकि अपेक्षा दु:ख का कारण है।

४५. मुझे अपने आप को बदलना है। धर्म की योग्यता पाने का पुरुषार्थ यही है । दूसरों को बदलने का प्रयत्न व्यर्थ है। दूसरों को, उनके भले के लिये प्रेरित किया जा सकता है । उन्हें कभी भी मजबूर नहीं करना चाहिये ।

४६. वर्तमान उदय को अर्थात् संयोग को बदलने का प्रयास नकर के उसे स्वीकार करने में ही समझदारी है, शान्ति है।

४७. वर्तमान को स्वीकारकर अपना पूरा पुरुषार्थ एकमात्र आत्मप्राप्ति के लक्ष्य पर केन्द्रित करें । क्योंकि वर्तमान उदय अर्थात् संयोग अपने हाथ में नहीं हैं परन्तु भविष्य अपने हाथ में है । अर्थात् हम अपने भविष्य को सँवार सकते हैं, इसलिये अपना पुरुषार्थ प्रतिक्रिया (reaction) में न लगाकर हमने अपना पुरुषार्थ अपना भविष्य सँवारने (action) में लगाना चाहिये।

४८. मुझे सभी संयोग, कर्म (पुण्य/पाप) के अनुसार ही मिलनेवाले हैं और कर्म (पुण्य/पाप) के अनुसार ही टिकनेवाले हैं।

४९. कोई मुझे दु:ख देता है तो उसका दोष मेरे पूर्वकृत पापकर्मों का है अर्थात् मेरे पूर्व के दुष्कृत्यों का ही दोष है। उन दुष्कृत्यों के लिये मन में माफ़ी माँग लेनी चाहिये।

५०. जब अपने साथ बुरा होता है तब अन्य किसी को दोष मत देना, वें मात्र निमित्तरुप हैं। दोषी तो हमारे अपने कर्म ही हैं।

५१. दूसरों को अपने पूर्वकृत पापकर्मों से मुक्त करानेवाले जानकर उपकारी मानना और मन में धन्यवाद देना। इससे उनके ऊपर ग़ुस्सा नहीं आयेगा।

www.jayeshsheth.com

५२. अगर कोई हमारे घर से कचरा साफ़ करता है तो हम उसे उपकारी मानते हैं । उसी तरह जब कोई हमारी आत्मा का कचरा (कर्म) साफ़कर देता है, तब उसे उपकारी मानना आवश्यक है।

५३. इस तरह धन्यवाद! स्वागतम! (Thank You! Welcome!) करके आत्मा का फ़ायदा करते रहना है। इससे वह जीव जहाँ भी होगा वहाँ उसे किसी प्रकार की शिकायत नहीं रहेगी। (No Complaint Zone)

५४. No Complaint Zone यानी मुझे किसी से भी कोई भी शिकायत नहीं है, क्योंकि वर्तमान में मेरे साथ जो कुछ हो रहा है वह मेरे अपने भूतकाल के कर्मों का फल है। इसलिये अगर मुझे किसी से शिकायत है तो केवल अपने आप से और किसी से नहीं।

५५. लोक के सभी जीव सम्बन्धी अपने भावों को मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थ इन चार वर्गों में ही बाँटना; अन्यथा वे भाव मेरे लिये कर्मबन्ध के कारण बनेंगे।

५६. हमारी सबसे बड़ी कमज़ोरी यह है कि हम हरदम दूसरों को बदलकर अपने अनुकूल बनाने में लगे रहते हैं, जिस में सफलता मिलना अत्यन्त कठिन है।

५७. अपने आप को बदलना सबसे आसान है फिर भी उसके लिये हम कभी प्रयास नहीं करते। अपने आप को धर्म के अनुकूल बदलना सम्यग्दर्शन की योग्यता प्राप्त करने के लिये अनिवार्य है।

५८. अनादि से हमने जगत के ऊपर अपना हुक्म चलाना चाहा है, जगत को अपने अनुकूल बदलना चाहा है। यही चाहा है कि सभी हमारे कहे अनुसार चलें और अपने आप को बदलें । परन्तु हम ने कभी भी अपना परिणमन भगवान के कहे अनुसार नहीं किया। बल्कि हम अनादि से अपनी मति अनुसार ही परिणमे हैं; यही स्वच्छन्दता है।

५९. अनादि से हम प्रशंसाप्रेमी हैं । अगर कोई हमारी निन्दा करता है तो हमें दुःख होता है। मगर हमें यह समझना है कि निन्दा-प्रशंसा, सुख-दुःख, रति-अरति, अमीरी-ग़रीबी इत्यादि सभी संयोग कर्मों के अधीन होते हैं। हमारे चाहने से या नहीं चाहने से उनमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। हाँ, हम आर्तध्यान और रौद्रध्यान के भागी अवश्य होंगे।

६०. अनादि से सत्य धर्म की प्राप्ति अतिदुर्लभ बनी हुई है। जब-जब हमें सत्य धर्म की प्राप्ति हुई, हम उसे पहचान ही न सके। अगर पहचाना भी तो उसपर श्रद्धा नहीं कर पाये।

६१. अनादि से हम सत्य धर्म के नाम पर कोई न कोई सम्प्रदाय, पक्ष, आग्रह या व्यक्ति-विशेष के प्रति राग में फँसकर रह गये । अपने उस आग्रह को ही हमने सत्य धर्म मानकर अपना अनन्त काल गँवाया है और अनन्त दुःख सहे हैं।

www.jayeshsheth.com

६२. सत्य धर्म पाने के लिये सच्चा वही मेरा और अच्छा वही मेरा यह भावना भाना नितान्त आवश्यक है।

६३. सत्य धर्म पाने के लिये जीव को सत्य स्वीकारने के लिये तत्पर रहना चाहिये (Ready to accept) और उसके अनुसार अपने आप को बदलने के लिये भी तत्पर रहना चाहिये (Ready to change)। बिना इस तैयारी के वह जीव सत्य धर्म नहीं पा सकता।

६४. सत्य धर्म ज्ञानी के अन्तर में बसता है। वह बाहर ढूँढने से नहीं मिलनेवाला। सत्य धर्म ज्ञानी के सांनिध्य में ही मिलेगा क्योंकि ज्ञानी ही जीव को आत्मा की पहचान आसानी से करा सकता है। इसलिये सत्य धर्म को कोई बाहरी क्रिया-काण्ड अथवा व्रत आदि में न मानकर उसे 'सम्यग्दर्शन की विधि' में कहे अनुसार अपने अन्तर में खोजना है तथा प्रकट करना है।

६५. जो मोक्षमार्ग जानता है वही उसे बता सकता है। मोक्षमार्ग संसार में डूबे हुए जीवों के लिये अति गहन और अगम्य है, परन्तु सत्पुरुष (ज्ञानी) के माध्यम से सुलभ है।

६६. सत्य धर्म की योग्यता प्रकट करने के लिये: नीति-न्यायपूर्वक अर्थार्जन, जो मिला उसमें सन्तोष, कम से कम समय अर्थार्जन के लिये देना, अधिक से अधिक समय स्वाध्याय-मनन-चिन्तन आदि में लगाना, सात्विक भोजन करना, कन्द मूल-अनन्तकाय का त्याग, जीवदया का पालन, रात्रिभोजन का त्याग, अभक्ष्य भोजन का त्याग, शरीर को कम से कम सँवारना, सादा जीवन, सुखशीलता का त्याग, अत्यधिक क्रोध-मान-माया-लोभ का त्याग, पुराने पापों का पश्चात्ताप, बारह भावनाओं का चिन्तन, जीवों के प्रति चार भावनाएँ भाना, पंचपरमेष्ठि के गुणों के प्रति अहोभाव, सभी जीवों के लिये गुणदृष्टि रखना, ये सभी गुण आवश्यक हैं।

६७. सत्य धर्म इतना सामर्थ्यवान है कि उसपर सच्ची श्रद्धा होने मात्र से जीव अपने आप सत्य धर्म के अनुकूल वर्तन करने लगता है।

६८. अपने आप को सत्य धर्म के अनुकूल बदलने से अपने सत्ता में रहे हुए कर्मों के ऊपर अनेक प्रक्रियाएँ होनी प्रारम्भ हो जाती हैं। जैसे पाप प्रकृति का पुण्य प्रकृति में संक्रमण, पुण्य का उदवर्तन, पाप का अपवर्तन, इत्यादि। इससे कई बातों में सूली की सज़ा सुई में बदल जाती है।

६९. धार्मिक व्यक्ति की सूली की सज़ा सुई में बदल जाने के बावजूद भी हमें उसका ज्ञान न होने से लोग कभी-कभी ऐसा भी सोचते हैं कि देखो यह व्यक्ति धार्मिक होने के बावजूद कितना दु:खी है। उन्हें पता नहीं है कि सच्चा धार्मिक व्यक्ति अब अमुक गति में जानेवाला नहीं होने से उसकी गति के लायक पापकर्म संक्रमित होकर अभी उदय में आये हैं। इस कारण लोगों को कभी-कभी लगता है कि लोग धर्म करने के बाद भी दु:खी रहते हैं।

www.jayeshsheth.com

७०. हमने अनादि से आज तक अनन्त बार दीक्षा ग्रहण की, अनन्त बार व्रत-तप आदि किये, अनन्त बार ध्यान आदि किये, अनन्त बार हमने 'मैं आत्मा हूँ' या 'मैं शुद्धात्मा हूँ' या 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'तत्त्वमसि' इत्यादि जाप किये या रट्टा लगाया; परन्तु सत् की प्राप्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई। क्योंकि जब तक आत्मा योग्यता की प्राप्ति नहीं करती तब तक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अति दुर्लभ है। अर्थात् पहले हमें आत्मा को मोह के ज्वर से बचाना है।

७१. दु:ख के संयोग में भी अगर जीव हमारी पुस्तक में बताये धन्यवाद! स्वागतम! (Thank You! Welcome!) का भाव लाने का पुरुषार्थ करता है, तब वह जीव दु:ख में भी सुखी रह सकता है। लोगों को लगेगा कि वह जीव बहुत दु:खी है, मगर वह जीव धन्यवाद! स्वागतम! (Thank You! Welcome!) और जो भी होता है अच्छे के लिये ही होता है के माध्यम से समाधानी और समभावी बनकर शान्त और प्रसन्न रहता है।

७२. मोहज्वर को नापने के लिये मानक मापदण्ड (थर्मोमीटर) है यह प्रश्न - हमें क्या पसन्द है? इस प्रश्न के उत्तर में जब तक सांसारिक वस्तु या सबन्ध या इच्छा या आकांक्षा है, तब तक हमें समझना है कि हमारा मोहज्वर बहुत तेज़ है और उसका इलाज करना आवश्यक है। मोहज्वर का इलाज 'सम्यग्दर्शन की विधि' नामक पुस्तक में दिया गया है।

७३. हमने अनादि से आज तक अनन्त बार दीक्षा ग्रहण की, अनन्त बार व्रत-तप आदि किये, अनन्त बार ध्यान आदि किये, अनन्त बार हमने 'मैं आत्मा हूँ' या 'मैं शुद्धात्मा हूँ' या 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'तत्त्वमसि' इत्यादि जाप किये या रट्टा लगाया; परन्तु सत् की प्राप्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई। क्योंकि यह सब हठयोग कहलाता है और वास्तव में सत्य धर्म हमारी पुस्तक में बताये गये उपचार (राजयोग) से सहज ही प्राप्त होता है, न कि हठयोग से।

७४. हमने अनादि से धर्म को बाहर ही ढूँढा है; मगर आत्मा का धर्म आत्मा के बाहर कैसे हो सकता है? बाहर से हमको केवल दिशानिर्देश ही मिल सकता है; परन्तु वह सम्यक् दिशानिर्देश प्राप्त करने के लिये हमारे पास खुला दिमाग़, शास्त्रों का गहन अध्ययन, शास्त्रों से मात्र अपने आत्मकल्याण के लिये कार्यकारी बातें (आत्मनिर्णय और आत्मानुभूति के लिये आवश्यक बातें) ही ग्रहण करने का भाव रखना चाहिये।

७५. आत्मप्राप्ति के लिये शास्त्रों से विवादास्पद बातें ग्रहण न करें अर्थात् जिनका उत्तर सिर्फ़ केवली भगवान ही दे सकते हों ऐसी विवादास्पद बातें ग्रहण न करके उन बातों के लिये मध्यस्थ भाव भाना और जैसा केवली भगवान ने देखा है वैसा मुझे मान्य है ऐसा भाव रखना, सच्चा वही मेरा और

अच्छा वही मेरा ऐसा भाव, सत्य को स्वीकारने की तत्परता (Ready to accept), उसके अनुसार जीव की अपने आप को बदलने की तत्परता (Ready to change), इत्यादि होना परम आवश्यक हैं।

७६. जिसने आत्मा का अनुभव किया है ऐसे सत्पुरूष का योग और उनके प्रति अपना पूरा समर्पण आवश्यक है। क्योंकि उनके प्रति अपने पूरे समर्पण से उनका दिया गया उपदेश हमारे जीवन में तुरन्त ही परिणमता है, अर्थात् हमारे जीवन में बहुत जल्द धर्म के अनुकूल बदलाव आता है।

७७. मेरे साथ कभी भी अन्याय नहीं होता, अर्थात् मेरे साथ जो भी घटित होता है वह निश्चय से मेरे कर्मों का ही फल है, तब अन्याय की बात ही नहीं रहती। बल्कि मेरे साथ जो भी होता है वही मेरे लिये न्यायसंगत है। परन्तु इससे मुझे अन्य किसी के साथ अन्याय करने की अनुमति नहीं मिलती, यह समझना परम आवश्यक है।

७८. आत्मप्राप्ति के लक्ष्य के साथ 'सम्यग्दर्शन की विधि' में बताये अनुसार वैराग्य और उपशम करना अति आवश्यक हैं।

७९. सत्पुरूष, सत्संग और सत्शास्त्र का अध्ययन इत्यादि सत्य धर्म पाने के लिये पथप्रदर्शक का काम करते हैं।

८०. सारे संयोग अनित्य हैं, कोई भी संयोग हमेशा साथ रहनेवाले नहीं हैं । इसलिये संयोगों से मेरापन और मैंपन त्यागना अति आवश्यक है।

८१. वैराग्य यानी मेरे मन में बसे संसार का नाश करना। बाहर का संसार हमें उतना बाधाकारक नहीं होता जितना बाधाकारक हमारे अपने मन में बसा संसार होता है। इसलिये पहले हमें अपने मन के संसार का नाश बारह भावना-अनुप्रेक्षा से करना है, बाद में बाहर के संसार का नाश क्रमश: अवश्य होगा।

८२. मन में बसे संसार का कारण दर्शनमोहनीय कर्म है और बाहर के संसार का कारण चारित्रमोहनीय कर्म है। पहले दर्शनमोहनीय कर्म जाता है तब सम्यग्दर्शन (चौथा गुणस्थानक) प्राप्त होता है। बाद में जब चारित्रमोहनीय कर्म क्रमश: जाता है तब आगे के गुणस्थानक प्राप्त होते हैं। बाहर का संसार का नाश क्रमश: होता है।

८३. संसार के सारे सम्बन्ध स्वार्थ पर आधारित और क्षणिक होने की वजह से, उनमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये। परन्तु अपना जो भी कर्तव्य है वह पूरी निष्ठा से निभाना है, उसमें कोई कमी नहीं रखनी है।

८४. शरीर अशुद्धि से भरा हुआ है, उसे कितनी भी बार स्नान कराने पर भी तुरन्त ही अशुद्ध हो जाता है। धुले हुए कपड़ों को एक बार भी शरीर पर धारण करने से कपड़े अशुद्धियुक्त हो जाते हैं । और शरीर में करोड़ों रोग भरे हुए हैं वे कब उदय में आयें इसका कोई भरोसा नहीं। ऐसे शरीर का मोह करने योग्य नहीं है।

८५. संसार आधि-व्याधि-उपाधि से भरा हुआ है। संसार में कहीं भी सुख नहीं है फिर भी जो सुख प्रतीत होता है वह सुखाभास मात्र है और क्षणिक भी है। वह सच्चा सुख नहीं है। जब तक मोह मन्द नहीं होता तब तक यह बात समझ में नहीं आती। इसलिये जिसे संसार में सुख दिखता हो, उसे सम्यग्दर्शन की विधि में बताये गये उपायों के द्वारा अपना मोह मन्द करना चाहिये ।

८६. मनुष्यभव अति दुर्लभ है, उसमें भी पूर्ण इन्द्रियाँ, दीर्घ आयु, आर्य क्षेत्र में जन्म, उत्तम कुल में जन्म, सत्य धर्म, श्रद्धा आदि एक-एक से अति दुर्लभ हैं । इन्हें पाने के बाद भी अगर हम इनका सही उपयोग नहींकर पायें तब हमें अन्ततः एकेन्द्रिय में जाने से कोई बचा नहीं सकता। और एकेन्द्रिय गति से बाहर निकलना चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति से भी अधिक दुर्लभ बताया गया है।

८७. Daily Progress यानी हर दिन प्रगति। अगर हम प्रत्येक दिन आन्तरिक आध्यात्मिक प्रगतिकर नहीं पाये तो हमारा आध्यात्मिक पतन निश्चित है। हमारे भाव स्थिर नहीं रहते। अगर वे उन्नत नहीं हुए तो निश्चित ही अवनत हो जायेंगे।

८८. अनन्त काल तक रहने के हमारे पास दो ही ठिकाने हैं - एक है निगोद और दूसरा मोक्ष। अर्थात् अभी हमारे पास दो ही विकल्प हैं - अगर हमने मोक्ष पाने के लिये सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो नियम से दूसरा विकल्प यानी निगोद प्राप्त होगा। निगोद तो हम संसारी जीवों की Default setting है। यानी बिना किसी यत्न के अपने-आप मिलता है मगर मोक्ष पाने के लिये सम्यग्दर्शन की विधि में बताये गये यत्न अर्थात् आत्मा का पुरुषार्थ करना आवश्यक है। अब तय हमें करना है कि हमें क्या चाहिये।

८९. इस मनुष्य भव का हर पल बेशक़ीमती है क्योंकि जो समय बीत गया, वह लौटकर नहीं आता है। किसी भी क़ीमत पर नहीं। इसलिये हमें हर पल का उपयोग विवेकपूर्ण ढंग से करना है और एक भी क्षण व्यर्थ नहीं गँवाना है।

९०. मैं देह रूप नहीं मगर देह मन्दिर में विराजमान भगवान आत्मा हूँ। मैं ही पाँचों इन्द्रियों के माध्यम से जानने-देखनेवाला एकमात्र ज्ञायक हूँ। इसलिये जब तक मैं हाज़िर हूँ तभी तक ये इन्द्रियाँ

जानती-देखती हैं। जैसे ही मैं इस शरीर से निकला (अर्थात् मरण हुआ) वैसे ही यही इन्द्रियाँ बेकार हो जायेंगी। वे बिना आत्मा के कुछ भी जान-देख नहीं सकतीं । वस्तुत: आत्मा ही सब कुछ जानती देखती है, न कि इन्द्रियाँ। इसीलिये आत्मा को ज्ञायक संज्ञा प्राप्त है।

९१. मैं (आत्मा) सत्-चित्-आनन्द स्वरूप हूँ । सत् यानी अस्तित्व, अर्थात् मेरा अस्तित्व त्रिकाल है। चित् यानी जानना देखना, अर्थात् मेरा कार्य त्रिकाल जानने देखने का है। आनन्द यानी अनन्त अव्याबाध अतिन्द्रिय सुख, अर्थात् मेरा स्वभाव त्रिकाल आनन्दमय है। इतने वैभववान होने के बावजूद कई जीव सुखाभास के पीछे पागल दिखते हैं, सुखाभास की भीख माँगते दिखते हैं। यह बड़ी करुणाजनक बात है।

९२. सच्चा सुख उसे कहते हैं जो स्वाधीन हो, शाश्वत हो, कभी भी उससे ऊबना न हो, दु:खमिश्रित न हो, दु:खपूर्वक न हो और दु:खजनक भी न हो। आत्मा ऐसी सुखमय है, अन्य जो भी सुख लगते या दिखते है वें सभी सुखाभास मात्र हैं । क्योंकि वे क्षणिक हैं, पराधीन हैं, दु:खमिश्रित हैं, दु:खपूर्वक हैं और दु:खजनक भी हैं।

९३. धर्म २४ x ७ का होता है अर्थात् चौबीस घण्टे और हफ़्ते के सातों दिन चले ऐसा होता है। चार भावना, बारह भावना, अन्य योग्यताओं के बोल और धन्यवाद! स्वागतम! (Thank You! Welcome!) का भाव हमें अपने चित्त में २४ x ७ सँजोना है। चूँकि हमारा कर्मबन्ध २४ x ७ चलता रहता है, हमें उससे बचने के लिये धर्म भी २४ x ७ चले ऐसा चाहिये। यह नहीं कि एक बार प्रक्षाल, पूजा, प्रवचन, सामायिक, क्रम, स्वाध्याय, ध्यान या प्रतिक्रमण इत्यादिकर लेने से हमारा काम पूरा हो गया।

९४. जागृति के लिये हमें हर घण्टे या दो घण्टे में अपने मन के परिणाम जाँचते रहना है। परिणाम को उन्नत करते रहना है और लगे हुए पापों का प्रायश्चित्त, निन्दा, गर्हा आदि करना है; फिर से ऐसे परिणाम न हों उसका ध्यान रखना है।

९५. जब भी समय मिले णमोकार मन्त्र का स्मरण करते रहना और हमें भी भगवान बनना है, यह लक्ष्य रखना।

९६. निरन्तर सत्संग की इच्छा, अन्तर्मुखी रहना और अपने दोष देखते रहना, उन्हें मिटाने (delete करने) का पुरुषार्थ करते रहना, इत्यादि केवल आत्मप्राप्ति के लक्ष्य से करना आवश्यक है। विद्वानों के लिये भी मोह को परास्त करना महादुष्कर कार्य है क्योंकि कोरी विद्वत्ता मोहराक्षस को पराभूत करने के लिये कार्यकारी नहीं है।

९७. मोह को परास्त करने के लिये जितनी वैराग्य और सम्यग्दर्शन की विधि में बतायी गई अन्य योग्यताएँ आवश्यक हैं उतनी विद्वत्ता की आवश्यकता नहीं है। बल्कि कभी-कभी तो विद्वत्ता कषाय (क्रोध-मान-माया-लोभ) को जन्म या बढ़ावा देनेवाली बन जाती है। इसलिये सदैव सावधान रहना आवश्यक है।

९८. जिसे आत्मा के बारे में जिज्ञासा होती है वर्तमान काल में वह भाग्यशाली जीव है।

९९. यदि आप सुख चाहते हैं तो अपनी शक्ति सुख खोजने में नहीं अपितु स्वात्मानुभूति के लक्ष्य से शुभ भावों में लगायें। इससे सुख अपने आप चलकर आयेगा।

१००. जब हम दूसरों के लिये अच्छा सोचते हैं या करते हैं तब हमारा भला होना अपने आप ही प्रारम्भ हो जाता है।

१०१. अनादि से हम लोकसंज्ञा से चले हैं यानी लोग जिसे सही मानते हैं उसे ही हमने सही माना। इसलिये अनादि से हम इस दु:ख भरे संसार में अनन्त दु:ख झेल रहे हैं।

१०२. ज्ञान और ज्ञानी के विनय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है। इससे हम सत्य-असत्य का विवेक करके मोहनीय कर्म का उपशम, क्षयोपशम या क्षय करके आत्मज्ञान पा सकते हैं ।

१०३. जब हम अपनी ग़लती को छिपाने या उसे सही साबित करने के चक्कर में पड़ जाते हैं तो हम अपने लिये अनन्तानन्त दु:खों को बुलावा देते हैं।

१०४. जीव के अनन्त संसार में डूबने के प्राय: निम्न स्थान हैं : विषय-कषाय, आरम्भ-परिग्रह, अहं-मम (मैं-मेरा), कर्तृत्वपन, निमित्ताधीनता, ईर्ष्या, परनिन्दा, दम्भ, शरीर-धन-कामभोग आदि, आर्तध्यान-रौद्रध्यान, प्राप्त धन के प्रति आसक्ति, अप्राप्त की तृष्णा, तत्त्व की ग़लत समझ, इत्यादि; इसलिये इन सभी कारणों से बचने का पुरुषार्थ करना आवश्यक है।

१०५. मुमुक्षु जब पाप करता है तब भी उसके अभिप्राय में पाप की अनुमोदना नहीं होती। अन्यथा वह मुमुक्षु कहलाने लायक ही नहीं होता।

१०६. मन को हल्के विचारों में जुड़े रहने देने से हमारा अनन्त भविष्य ख़राब हो सकता है।

१०७. तत्त्व का ग़लत निर्णय या विपरीत अभिनिवेष हमें अनन्त संसार ही देता है।

१०८. जिन सिद्धान्त की यथार्थ समझ ही हमें आत्मप्राप्ति और अनन्त सुख दिला सकती है।

१०९. आत्मप्राप्ति के लिये अपने को विषयगृद्धि से बचाना अति आवश्यक है।

www.jayeshsheth.com

११०. जब हम यह समझ लेते हैं कि सभी जीव सिद्ध समान हैं, तो फिर हमारे अहंकार को कहाँ स्थान मिलेगा?

१११. विद्वत्ता ऐसी चाहिये कि जो हमें संसार के दुःखों से मुक्त कराये। वास्तव में उसे ही सच्ची विद्वत्ता कहना चाहिये।

११२. बिना विद्वत्ता भी सम्यग्दर्शन हो सकता है परन्तु बिना पात्रता सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता।

११३. हम जब धर्म करते हैं तब यह देखना आवश्यक है कि हम नीतिवान हैं या नहीं। अगर हम नीतिवान नहीं हैं तो फिर हमें अपने धर्म के बारे में सोचना पड़ेगा कि वह सच्चा है या नहीं। क्योंकि सत्य धर्म पर चलनेवाला व्यक्ति अनीतिकर नहीं सकता।

११४. जब हम कोई भी कार्य करते हैं तब उसका उद्देश्य जाँचना आवश्यक है। अगर हमारा उद्देश्य ग़लत है तो उस उद्देश्य को ठीक करने के बारे में सोचना लाज़िमी बन जाता है।

११५. हमें लगता है कि हम आँखों से देखते हैं परन्तु आँखें तो केवल माध्यम हैं। जब हम किसी खिड़की से या कार की विंडस्क्रीन से देखते हैं तब वह खिड़की या विंडस्क्रीन नहीं देखती, हम देखते हैं। ठीक उसी प्रकार जब हम आँखों से देखते हैं तब आँखें नहीं, हमारी आत्मा देखती है। वास्तव में वह देखनेवाली आत्मा मैं ही हूँ।

११६. स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता के बीच की भेदरेखा बहुत पतली है। इसलिये हमें सदैव यह जाँचते रहना चाहिये कि हम स्वतन्त्रता के नाम पर स्वच्छन्दता का पोषण तो नहींकर रहे?

११७. हमारी उदारता यह नहीं बताती कि हम धनी हैं या नहीं। हमारी उदारता तो हमारा व्यक्तित्व और भविष्य बताती है।

११८. हम अनादि से सच्ची समझ के अभाव की वजह से दुःख भोग रहे हैं। जब हमारी समझ सच्ची यानी सम्यक् बन जाती है तब हमारे वर्तमान और भविष्य दोनों सुखमय हो जाते हैं।

११९. आत्मार्थी कभी भी वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहता। वह तो केवल अपनी आत्मा के लिये क्या आवश्यक है उसपर विचारकर बिना वाद-विवाद में पड़े उसी का पालन ख़ुद करता है और औरों को उसके लिये प्रेरित करता है।

१२०. जब हम अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं तब हमें यह अवश्य ख़याल रखना है कि हम अपना भविष्य दुःखमय बना रहे हैं।

www.jayeshsheth.com

१२१. प्राप्त अधिकारों का सदुपयोग न सिर्फ़ हमें महान बना सकता है बल्कि हमारे वर्तमान और भविष्य भी सँवर सकते हैं।

१२२. सत्य धर्म यानी कौन सा धर्म? सत्य धर्म यानी सम्यग्दर्शन। सत्य धर्म यानी आत्मज्ञान। सत्य धर्म यानी स्वात्मानुभूति। क्योंकि बिना आत्मज्ञान के धर्म में प्रवेश ही नहीं होता।

१२३. आत्मज्ञानी ज़्यादा से ज़्यादा समय आत्मा में रहना चाहते हैं परन्तु जब तक उनमें चारित्र की निर्बलता है तब तक बग़ैर अभिप्राय के भी रोग के उपचार स्वरूप भोग भोगते हैं।

१२४. अठारह प्रकार के पापों में मिथ्यात्व सबसे बड़ा पाप है। उसे दूर करने के लिये एकमात्र आत्मज्ञान के लक्ष्य से अन्य पापों से दूर रहने का प्रयास करना चाहिये।

१२५. साधक को लज्जायुक्त जीवन जीना चाहिये। निर्लज्जता से जीते हुए वह सच्ची साधना नहींकर सकता।

१२६. दु:ख पुराने पापों से आता है। जब दु:ख आता है तब साधक जीव उसका प्रतिकार अवश्यकर सकता है परन्तु अपने भाव बिगाड़े बग़ैर। क्योंकि प्रतिकार करते हुए अगर हमारे भाव बिगड़ते हैं तब अवश्य ही नये पापों का बन्ध होता है। वे नये पाप हमें भविष्य में नये दु:ख देने में सक्षम होते हैं।

१२७. पाप छिपाने के भाव नये प्रगाढ़ पापों का बन्ध कराते हैं जो हमें भविष्य में दु:ख देने में सक्षम हैं।

१२८. साधक को अपने साथ प्रामाणिकता से रहना चाहिये। अगर वह अपने साथ बेईमानी करेगा तो उसे अनन्त काल तक दु:ख रूपी संसार में भटकना पड़ सकता है।

१२९. इन्द्रिय के विषय जिस जीव को सुखमय प्रतीत होते हैं, वे उस जीव के लिये पापबन्ध के कारण बनते हैं। वे पापबन्ध उस जीव को बहुत काल तक दु:ख देने में सक्षम हैं।

१३०. हम जब कोई भी पाप छिपकर करते हैं और आनन्दित होते हैं कि किसी को मेरे पाप की ख़बर नहीं है, तब वह पाप बन्ध हमें बहुत काल तक दु:ख देने में सक्षम होता है। क्योंकि ऐसे पाप बन्ध अधिक तीव्र होते हैं।

१३१. हम जिस सम्प्रदाय में हैं वह हमें सत्य की ओर ले जा रहा है या नहीं यह अपने परिणाम देखकर जाँचते रहना है।

१३२. अगर परिणाम में कोई सुधार नहीं आ रहा है तब हमें यह जाँचना है कि या तो डॉक्टर (गुरु) ठीक नहीं है या दवाई (साधना) ठीक नहीं है या फिर हम दवाई (साधना) ठीक से नहीं ले रहे हैं।

१३३. जिन्हें धर्म करके देवगति चाहिये उन्हें शायद देवगति मिले या न भी मिले परन्तु उन्हें भविष्य में एकेन्द्रिय में अनन्त काल बिताना पड़ सकता है क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि दूसरे देवलोक तक के अधिकांश देव एकेन्द्रिय में जाते हैं।

१३४. आत्मप्राप्ति के लिये धर्म करनेवालों को देवगति सहज ही मिल जाती है और आत्मप्राप्ति के बाद अनन्त सुखरूपी मोक्ष मिलता है।

१३५. जीव अपने कर्मों के अनुसार गति पाता है। जब उसकी रुचि इन्द्रियविषयों में होती है तब पापकर्म बँधते हैं और इससे दुर्गति मिलती है।

१३६. सद्गति के लिये पुण्य आवश्यक हैं। अच्छी गति बार-बार मिले और फिर मोक्षप्राप्ति हो इसके लिये आत्मज्ञान ज़रूरी है।

१३७. अगर वह पुण्य आत्मज्ञान के लक्ष्यवाला न हो तो उस पुण्य से बार-बार सद्गति मिलना थम जाता है। संसार पुण्य से पार नहीं होता बल्कि आत्मज्ञान से पार होता है।

१३८. केवल आत्मज्ञान के लक्ष्यवाला पुण्य अच्छा माना जा सकता है।

१३९. जब हम यह निर्णयकर लें कि एकमात्र आत्मज्ञान ही प्राप्त करने योग्य है, अन्यत्र कहीं भी पुरुषार्थ करने योग्य नहीं है तब हमारी आत्मप्राप्ति आसान हो जाती है।

१४०. शास्त्र को दर्पण समझकर पढ़ना है। उससे अपने भावों का मिलान करते रहना है और अपने भावों को शास्त्र के अनुरूप बनाने का प्रयास शुरू करना है।

१४१. हर परिस्थिति में विवेक को जागृत रखना आवश्यक है क्योंकि बिना विवेक के साधक कब गिर जाये मालूम नहीं पड़ता।

१४२. हमने अनादि से अपना सारा कौशल चालबाज़ी करने में लगाया है। अब से हमें अपना सारा कौशल चालबाज़ी छोड़ने में लगाना है।

१४३. केवल नैतिक आचरण होने से आत्मज्ञान नहीं मिलता, उसके लिये अन्य योग्यताओं का होना भी उतना ही आवश्यक है।

१४४. दूसरों के साथ कठोरता बरतनेवालों को यह सोचना चाहिये कि जो मैं दे रहा हूँ वही मुझे मिलेगा। क्या मैं उसके लिये तैयार हूँ? ऐसा सोचते ही उनकी कठोरता ख़त्म हो जायेगी जिससे उनका भविष्य सँवर जायेगा।

www.jayeshsheth.com

१४५. आत्मज्ञानी दयावान तो होता ही है। इससे यह नहीं समझना कि सिर्फ़ दयावान होने से आत्मज्ञान हो जायेगा। आत्मज्ञान के लिये अन्य योग्यताओं का होना भी आवश्यक है।

१४६. इस जीवन में अगर आत्मज्ञान न भी मिले तो हताश होने की ज़रूरत नहीं। हम सभी को कभी न कभी तो नींव डालनी ही है। एक बार सत्य मार्ग में चलना शुरुकर दिया तो मंज़िल अपने आप ही मिलनी है। उसमें हताशा की कोई बात नहीं है।

१४७. हमें हर जीव से कुछ न कुछ ज़रूर सीखना है क्योंकि हर जीव में कोई न कोई गुण ज़रूर होता है।

१४८. बड़ों के अनुभव से हमें सीख लेनी है। नहीं तो हमें संसार में बहुत भटकना पड़ सकता है।

१४९. जिन्हें ससांर में अपना नाम करना है और उसी के लिये काम करते हैं, उन्हें संसार में बहुत भटकना पड़ सकता है।

१५०. हमारे शास्त्र कहते हैं कि हमने कई बार दीक्षा ली पर मोक्ष नहीं पाया। क्योंकि हमने बिना आत्मज्ञान के दीक्षा ली और बिना आत्मज्ञान के किसी का मोक्ष नहीं होता।

१५१. शास्त्रों में कहा गया है कि आत्मा स्वरूप से शुद्ध है। ऐसा जानकर हमें स्वरूप प्राप्ति का पुरुषार्थ करना है न कि ऐसा मानकर हमें भ्रम में रहना है और उसका आनन्द लेते रहना है।

१५२. अगर हमने मिथ्यात्व की दशा में ही अर्थात् बिना स्वात्मानुभूति के ही अपनी आत्मा को शुद्ध मानना शुरुकर दिया और उसी भ्रान्ति का आनन्द लेना प्रारम्भकर दिया तब हम पुराषार्थहीन दशा को प्राप्त हो जायेंगे। क्योंकि जब हम अपने को शुद्ध ही मानते हों और उसी भ्रम का आनन्द भी लेते हों तो फिर आगे उस शुद्धात्मा को पाने के लिये प्रयत्न ही नहीं करेंगे।

१५३. यदि हम प्रत्येक जीव से कुछ न कुछ सीखना प्रारम्भकर दें तो हमें हर दिन बेहतर बनने से कोई रोक नहीं सकता।

१५४. हमने अनादि से प्रभु के उपदेश को कई बार सुना है लेकिन हमने उसे स्वीकार नहीं किया। इसलिये हम अभी तक संसार में भटक रहे हैं।

१५५. जब हम किसी कार्य के लिये प्रयास करते हैं और फिर भी वह कार्य सिद्ध नहीं होता तब हमें उस असफलता को होनी के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये। उससे हमारा मन आर्तध्यान से बच जाता है।

www.jayeshsheth.com

१५६. प्रत्येक जीव पुरुषार्थ करता है और उसके पुरुषार्थ की दिशा ही उस जीव का भविष्य तय करती है।

१५७. हर जीव अपना नाम और ख्याति इसी दुनिया में छोड़ जाता है। केवल कर्म ही साथ जाते हैं। इसलिये पुरुषार्थ नाम और ख्याति के लिये नहीं अपितु आत्मा के उत्थान के लिये करना चाहिये।

१५८. जब हम दूसरों पर हँसते हैं तब हम पाप का बन्ध करते हैं। इससे भविष्य में हम कई बार हँसी के पात्र बन सकते हैं।

१५९. हर संयोग में जीव या तो प्रसन्न होता है या खिन्न होता है। इससे पापबन्ध होता है। इसलिये संयोग से न तो प्रसन्न होना है और न खिन्न ही होना है। कर्मसंयोग जैसा भी हो उसे स्वीकार करना है और उसका अपनी आत्मा के उत्थान के लिये समुचित उपयोग करना है।

१६०. जब कोई भी जीव सांसारिक वस्तु के लिये संघर्ष करता है तब उससे उसे पाप का बन्ध होता है। सांसारिक वस्तु संघर्ष से नहीं पुण्य से मिलती है। इसलिये सांसारिक वस्तु के लिये संघर्ष नहीं करना है। उसके लिये केवल उचित पुरुषार्थ ही करना है और धर्म के लिये ज़्यादा से ज़्यादा पुरुषार्थ करना है।

१६१. लोग धन से अपने आप को महान मानने लगते हैं। धन अपने पूर्वकृत पुण्य का ही फल है मगर जब हम धन से अपने आप को महान मानने लगते हैं तब नये पापों का बन्ध होता है जो हमें निर्धन अवस्था में ले जा सकता है। इसलिये धन से अपने आप को महान न मानकर उसका उचित उपयोग करना चाहिये जिससे वह बार-बार मिलता रहे।

१६२. सच्चा सुख वैराग्य से आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद ही चखने को मिलता है। सारा सांसारिक सुख छलावा मात्र ही है। जिसे सांसारिक सुख ही प्रिय हैं ऐसे जीव को वे नियम से दु:ख के कारण बनते हैं।

१६३. कामयाबी पुण्य से मिलती है और हम समझते हैं कि वह हमारी क़ाबिलीयत से मिली है। कामयाबी सिर्फ़ क़ाबिलीयत से नहीं मिला करती।

१६४. सत्य धर्म के फलस्वरूप अनुकूलता और अनाकुलता (सच्चा सुख) दोनों ही मिलते हैं।

१६५. हम पढ़ाई करके डिग्री तो हासिलकर लेते हैं मगर साथ में सच्ची समझ को भी बढ़ाकर आत्मकल्याण के बारे में कभी नहीं सोचते।

www.jayeshsheth.com

१६६. हम किसी के प्रति चाहत को ही भक्ति मान लेते हैं। लेकिन जब भक्ति सम्यक् होती है तब एकमात्र आत्मा के प्रति ही चाहत शेष रह जाती है।

१६७. जीव अपना सारा जीवन उपाधि इकट्ठा करने में ख़र्चकर देता है फिर भी सन्तोष नहीं मिलता। यह रोग अनादि का है इससे जीव को बचना है।

१६८. जीव की दृष्टि सदैव अपनी कमियों पर ही रहती है, जिससे वह सदैव दु:खी रहता है। हमें अपनी दृष्टि सदैव अपनी अच्छाइयों पर रखकर ख़ुश रहना है और जब भी कमियाँ दिखें उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना है।

१६९. हम जीवनभर जो भी काम करते हैं उसी से हमारा व्यक्तित्व पहचाना जाता है और उसी से कर्म बन्धते हैं। इसीलिये हमें जीवन भर अच्छे काम करने चाहिये।

१७०. सच्ची साधना वह होती है जो हमें अपने स्वभाव के क़रीब ले जाये। बाक़ी सारी साधना नाममात्र की साधना है।

१७१. संयोग अच्छे हों या बुरे, हमें हर संयोग से कुछ न कुछ सीखना चाहिये।

१७२. जो अपने को मात्र वर्तमान पर्याय जितना ही मानता हो वह सत्य को प्राप्त नहींकर सकता। आत्मा त्रिकाल है, उसे वर्तमान पर्याय जितना ही मानने से मिथ्यात्व ही दृढ़ होता है।

१७३. हमें अपनी दृष्टि के अनुसार ही अभेद-अखण्ड आत्मा प्राप्त होती है। अगर हमारी दृष्टि भेद पर है तो अभेद-अखण्ड आत्मा प्राप्त नहीं होती।

१७४. आत्मा को समझाने के लिये उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि भेद किये गये हैं। अनन्त गुणभेद-शक्तिभेद भी किये गये हैं। वास्तव में आत्मा एक-अभेद है, उसमें कोई भेद नहीं है। अगर हमने बिना स्वात्मानुभूति के उन शक्तियों का भ्रमित आनन्द लेना प्रारम्भ किया तब फिर एक-अखण्ड आत्मा का अनुभव सम्भव नहीं है। क्योंकि भेद में रमते हुए अभेद का अनुभव असम्भव है।

१७५. आत्मा को समझाने के लिये उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि भेद किये गये हैं। वास्तव में आत्मा एक-अभेद है, उसमें कोई भेद नहीं है। अगर हम उनमें से किसी भी भेद को भौतिक रीति से निकालकर शुद्धात्मा का अनुभव लेना चाहेंगे तो शुद्धात्मा का अनुभव सम्भव ही नहीं है। क्योंकि भेद में रमते हुए अभेद का अनुभव असम्भव है।

१७६. जानकारी हेतु आत्मा की महिमा जानने-पढ़ने में कोई दिक़्क़त नहीं। लेकिन अगर हमने बिना स्वात्मानुभूति के उस महिमा का भ्रमित आनन्द लेना प्रारम्भकर दिया तो फिर हम पुरुषार्थहीन दशा

को प्राप्त हो जायेंगे। अगर हमने अपने आप को वर्तमान पर्याय में ही महिमावान मान लिया तो फिर आगे उस महिमा को प्रकट करने का पुरुषार्थ क्यों करेंगे? अर्थात् नहीं करेंगे।

१७७. पर में एकत्व करने वालों को अनन्त काल तक स्वात्मानुभूति नहीं मिलती। इससे वे अनन्त काल तक संसार में भटकते हुए दु:ख झेलते हैं।

१७८. बिना अपनी ग़लती सुधारे हमें कामयाबी नहीं मिल सकती। इसलिये हमें ठण्डे दिमाग़ से अपनी ग़लत धारणाओं को सम्यक् कैसे करें इसके बारे में सोचना चाहिये।

१७९. हम अपने चित्त को जिन विचारों में मग्न रखते हैं वही विचार हमारी आत्मा की दिशा और दशा तय करते हैं।

१८०. जब हम अपनी ग़लती बतानेवालों पर क्रोध करना प्रारम्भकर देते हैं तब हमारी प्रगति रुक जाती है।

१८१. अगर हमें धर्म में सफल होना है तो हमें शास्त्रों का सर्वांगीण अभ्यास करके अपनी धारणा सम्यक् बनाने पर ध्यान देना चाहिये।

१८२. अगर हम सत्ता के शिखर पर विराजमान होकर अन्याय-अनीति करते हैं तो हमारा भविष्य अन्धकारमय ही होगा यह बात तय है।

१८३. धर्म की हर क्रिया के पीछे कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य होता है। उसे जानकर उस उद्देश्यपूर्ति के लिये ही वह क्रिया करनी चाहिये।

१८४. हम जो भी धर्म करें वह आत्महित के लिये ही करें यह सुनिश्चित करना चाहिये।

१८५. जब हमारे पुण्य का उदय हो अर्थात् सभी सुख-सुविधायें प्राप्त हों तब अगर हम धर्म नहीं करते तो हमारा भविष्य अन्धकारमय ही होगा यह बात तय है।

१८६. हमारी सोच से ही हमारा अभिप्राय बनता है और अभिप्राय के अनुसार ही कर्मों का अनुबन्ध होता है। इसलिये हमें अपनी सोच सही करने का प्रयास हरदम करते रहना चाहिये।

१८७. पर्याप्त धन इकट्ठा करके धर्म करेंगे यह कभी सोचना ही नहीं चाहिये। क्योंकि हमारा मन ऐसा है कि जितना भी धन प्राप्त हो कभी पर्याप्त लगता ही नहीं।

१८८. धर्म के प्रति सच्ची लगन ही हमें अपने मक़ाम तक पहुँचायेगी।

Available on www.jayeshsheth.com

१८९. जिसने भी आत्मप्राप्ति की है, वह निश्चित ही भविष्य का भगवान है। उसका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

१९०. तीव्र राग आत्मप्राप्ति के लिये बाधक कारण है। उसका सम्यक् शमन किये बिना ज्ञान की शीतलता का लाभ नहीं मिल सकता, आत्मप्राप्ति नहीं हो सकती।

१९१. आत्मप्राप्ति के लिये लघुता आवश्यक है क्योंकि उसी से अपने ग़ुरूर का नाश होता है। ग़ुरूर के नाश होने पर ही हम आत्मप्राप्ति के निकट पहुँचते हैं।

१९२. धन के लिये धर्म नहीं किया जाता बल्कि सत्य धर्म से धन सहज ही प्राप्त होता है। परन्तु उस धन में अगर हम सुखबुद्धि रखते हैं तब वह धन अपना अहित ही करता है। इसलिये धर्म हमें सिखाता है कि आत्मा के अलावा कहीं भी सुखबुद्धि नहीं करनी चाहिये।

१९३. अपने आप को बदलना सबसे आसान है फिर भी उसके लिये हम कभी प्रयास नहीं करते। अपने आप को धर्म के अनुकूल बदलना सम्यग्दर्शन की योग्यता प्राप्त करने के लिये अनिवार्य है।

१९४. मुझे अपना फ़र्ज़ पूरी सच्चाई और ईमानदारी से निभाना है लेकिन दूसरों से ऐसी अपेक्षा नहीं रखनी है क्योंकि अपेक्षा दु:ख का कारण है।

१९५. जो लोग सम्पत्ति के लिये लड़ते हैं तथा दूसरों को धोखा देते हैं वे लोग अपना अनन्त काल विपत्तियुक्त बना लेते हैं। इससे हमें पता चलता है कि सम्पत्ति के लिये लड़ना-धोखा देना समझदारी नहीं बल्कि नितान्त मूर्खता है।

१९६. आजकल लोग आत्मप्राप्ति किये बिना ही प्रभावना करने निकल पड़ते हैं। सच्ची प्रभावना आत्मप्राप्ति के बाद ही सम्भव है। पहले आत्म प्राप्ति करके उसके लिये दिशा निर्देश देना सबसे बड़ी प्रभावना है।

१९७. जिसे सत्य धर्म पाना है उसे अपनी तीव्र पसन्द-नापसन्द को सम्यक् प्रकार से हटाना होगा।

१९८. जिसे लोग क्या कहेंगे इस बात की चिन्ता है वह सत्य धर्म नहीं पा सकेगा क्योंकि वह लोकसंज्ञा से संचालित हो रहा है, उसके पास सत्य के लिये लोकसंज्ञा छोड़ने की हिम्मत नहीं।

१९९. जिसे संसार में सुख प्रतीत हो रहा है उसके लिये सत्य धर्म समझना कठिन है।

२००. हम अपने दोषों की वजह से ही सत्य धर्म से दूरी बनाये रखते हैं, हमें उन दोषों की सम्यक् चिकित्सा करनी चाहिये।

२०१. जिसने सत्य धर्म समझ लिया वह हर हाल में ख़ुश रहेगा क्योंकि उसे पता है कि जो भी हो रहा है वह अच्छे के लिये ही हो रहा है।

२०२. हम सोचते हैं कि धर्म बुढ़ापे में करेंगे लेकिन अपनी आयु कितनी है यह किसे पता है? इसलिये आज अपने जीवन का आख़िरी दिन है इस प्रकार से धर्म करना चाहिये।

२०३. प्रभावना करने के लिये पहले ख़ुद सत्य धर्म प्राप्त करना आवश्यक है। मात्र प्राध्यापक जैसे पढ़ाने से प्रभावना नहीं होती। उसके लिये वैज्ञानिक की तरह पहले अपने जीवन में सत्य धर्म का प्रयोग आवश्यक है।

२०४. हमें स्वयं अनुशासन में रहना है परन्तु दूसरों पर अनुशासन नहीं थोपना है। दूसरों को हम केवल प्रोत्साहन दे सकते हैं और कुछ नहींकर सकते।

२०५. हमें दूसरों की निन्दा नहीं करनी है बल्कि उनकी ग़लतियों से सीखना है। हमें उन ग़लतियों को दोहराना नहीं है। अगर हमसे ग़लती हो भी जाये तो माफ़ी माँगनी है और आगे ऐसी ग़लती न हो इसका ख़याल रखना है।

२०६. पापानुबन्धी पुण्य के प्रभाव से लोग पाप करते हुए भी पैसे तो कमा लेते हैं लेकिन उन्हें यह नहीं पता है कि उनका अनन्त भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। यह अत्यन्त करुणाजनक बात है।

२०७. अगर हम प्रतिकूलता आने पर परेशान हुए तो अनन्त कर्मों का बन्ध होता है। अगर हम उस प्रतिकूलता को पाप का उदय मानकर स्वीकार लेते हैं तो वह प्रतिकूलता आधी रह जाती है। और जब हम यह समझ लेते हैं कि इस प्रतिकूलता से हमारे कर्मों की निर्जरा हो रही है तो वह कष्ट भी नहीं देती।

२०८. जब हम पद, प्रतिष्ठा और अनुकूलता के पीछे भागते हैं तब नियम से पाप बाँधते हैं जबकि अगर हमारे पुण्य पुख़्ता हैं तब वही पद, प्रतिष्ठा और अनुकूलता स्वयं घर चलकर आते हैं।

२०९. जिसे धर्म करने से आनन्द नहीं मिलता उसे यह समझना है कि वह धर्म के नाम पर जो कुछ भीकर रहा है वह सत्य धर्म नहीं है।

२१०. हम भीड़ से प्रभावित होकर धर्म चुनते हैं परन्तु सत्य धर्म भीड़ देखकर नहीं, परीक्षा करके अपनाया जाता है।

२११. धर्मप्राप्ति तथा मोक्षप्राप्ति के लिये सम्यक् पुरुषार्थ के साथ धैर्य भी आवश्यक है।

www.jayeshsheth.com

२१२. धर्मप्राप्ति के लिये पहले मान्यता का बदलाव सबसे बड़ा बदलाव कहलाता है।

२१३. बहस करने से सत्य धर्म की प्राप्ति असम्भव है। बहस तो वह करता है जिसे सीखना नहीं सिखाना हो।

२१४. भावनासहित धर्मक्रियाएँ कार्यकारी हैं। बिना भावना की धर्मक्रियाएँ मात्र धार्मिकता का दिखावा हैं। उनसे कोई लाभ नहीं।

२१५. लोग धर्म की पढ़ाई करके भी डिग्री पाना चाहते हैं जबकि ऐसी कोई भी डिग्री मुक्ति दिलाने में असमर्थ है। मुक्ति चाहनेवालों का मुख्य प्रयोजन पढ़ाई या डिग्री नहीं बल्कि अपने जीवन में उस शिक्षा का प्रयोग होता है।

२१६. चाहे कितने भी उच्च आसन पर हों, अगर आत्मा को नहीं जाना तो अगले भव में पशु भी बने तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। और आगे निगोद तो निश्चित है ही।

२१७. जिसने आत्मा के श्रद्धान मात्र से आने वाला शान्त भाव चखा ही नहीं उसे तो बाह्यसाधनों में ही सुख दिखता है। जिस दिन उसे अपने भीतर सुख दिखने लगे तो समझ लेना कि उसकी साधना शुरु हो गयी है।

२१८. लोभ पाप का बाप है। लोभी अन्धा होता है। वह न्याय-अन्याय का विचार नहीं करता।

२१९. लोग पुण्य का कारण मानकर दान देते हैं और उससे अपना मान पोषित करते हैं। मगर जब तक आत्मज्ञान नहीं होता तब तक दान प्राय: मान का कारण बनता है और उससे अपना ही नुक़सान होता है।

२२०. लोग पाप करते हैं और मन में भाव पाप छिपाने का होता है। पाप को छिपाया तो जा सकता है पर उसका फल कैसे छिपेगा? पाप का फल कभी छिप नहीं सकता।

२२१. अनादि काल से हमने दुनिया को साधने के ही प्रयत्न किये हैं लेकिन उनसे दु:ख के अलावा आज तक कुछ भी हासिल नहीं हुआ। यदि सचमुच दु:खमुक्ति चाहिये तो हमें अपने स्वरूप को साधना पड़ेगा।

२२२. लोग समझते हैं कि हमें 'सम्यग्दर्शन की विधि' पुस्तक मिल गया तो फिर गुरु की डाँट खाने की क्या आवश्यकता है? वे यह नहीं जानते कि सम्यग्दर्शन की योग्यता पाने के लिये गुरु की डाँट सबसे ज़रूरी औषधि है।

२२३. केवल आत्मा की लगन हो और आत्मा न मिले यह असम्भव है।

२२४. विषय भोग जब तक अपनी आत्मा के लिये विष न लगें तब तक उनका त्याग ज़्यादा दिन नहीं टिकता।

२२५. वर्तमान परिणामों को सम्भालिये, वे ही आपके भविष्य को निर्धारित करते हैं।

२२६. अध्यात्म मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा घमण्ड है। गुरु के प्रति समर्पण भाव से घमण्ड नष्ट हो जाता है।

२२७. इच्छा अध्यात्म मार्ग में बाधा है। इच्छा का फल निगोद है। यह समझने से इच्छा अपने आप दूर हो जायेगी।

२२८. ज्ञानी को राग से राग नहीं होता क्योंकि उसे राग का फल पता है। इसके विपरीत अज्ञानी को राग कष्ट रूप नहीं लगता। वह तो रागरहित जीवन की कल्पना भी नहींकर सकता।

२२९. इन्द्रिय भोगों से कुछ काल के लिये तृप्ति अवश्य मिलती है परन्तु इन्हें भोगने से बार-बार भोगने की इच्छा अधिक प्रबल होती है। यह इच्छा पीड़ादायी है। इच्छा और भोग दोनों पापबन्ध के कारण हैं। वे हमें भविष्य में दु:ख देते हैं।

२३०. सांसारिक सुख एक छलावा है। भोग तो सुख के नाम पर दुःख उत्पन्न करने के साधन बनते हैं। इनसे बचना नितान्त आवश्यक है।

२३१. जिन्हें तत्त्वजिज्ञासा हो उन्हें कोई रोक नहीं सकता। सत्यान्वेषी निडर होते हैं। परिस्थिति कैसी भी हो, वे निरन्तर तत्त्व चिन्तन करते रहते हैं।

२३२. जिसे आत्मा के बारे में सोचने का समय ही नहीं उसका भविष्य अन्धकारमय और पीड़ादायक है।

२३३. हमारा बाहर में सुख ढूँढना ही हमारे अन्धकारमय भविष्य का संकेत देता है। सुख यदि बाह्यसाधनों में होता, तो ज्ञानी अन्तर्मुख क्यों होते?

२३४. हम भौतिक उपलब्धियों में सुख की कल्पना करते हैं और उसी ओर दौड़ते हैं। इससे हमें दु:ख के अलावा कुछ नहीं मिलता। इच्छा के अभाव से ही हम सच्चा सुख पाने लायक बनते हैं।

२३५. अनैतिक आचरण द्वारा हम स्वयं ही अपना भविष्य अन्धकारमय और पीड़ादायक बना लेते हैं।

२३६. हमें इस जीवन में जो समय और शक्ति मिले हैं उनका सही उपयोग करके अपने आप को इस जन्म-जरा-मरण के चक्कर से मुक्त करना है, इस चक्कर को बढ़ाने में नहीं लगना है।

www.jayeshsheth.com

२३७. जब तक हमें परद्रव्य दुःख का कारण लगता है तब तक हम सच्चा सुख प्राप्त नहींकर पायेंगे। सच्चा सुख हमारे भीतर है, हमें उसे खोजना है और उसी में ठहरना है।

२३८. हम कब तक धनवानों के पीछे लगे रहेंगे जब तक यह बात नहीं समझते कि हमें पुण्य से धन की प्राप्ति होती है न कि किसी धनवान के पीछे भागने से। इससे पता चलता है कि हमें प्रभु के कथन पर विश्वास नहीं है अर्थात् प्रभु पर विश्वास नहीं है।

२३९. आत्मानुभव सरल है लेकिन जिसे संसार अच्छा लगता हो उसके लिये अत्यन्त कठिन है।

२४०. इस संसार में मुफ़्त में कुछ नहीं मिलता। धनप्राप्ति पुण्य के उदय से ही होती है न कि धनिकों के पीछे भागने से। इससे यह नहीं समझना कि हमें लाभ करानेवाले उपकारी नहीं है। वे अवश्य उपकारी हैं परन्तु हमारे पुण्योदय के अभाव में वे कुछ नहींकर सकते।

२४१. बाह्य सुखों की कल्पनाकर उनके पीछे भागता है जिसे इस बात का यक़ीन नहीं कि सच्चा सुख आत्मा के अलावा कहीं नहीं है। ऐसा व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं हो सकता क्योंकि उसका नरक-निगोद में अनन्तकाल के लिये जाना निश्चित है।

२४२. मायाचार तिर्यंच गति का कारण है। मायाचार करने पर अन्य किसी को पता चले या न चले, अनन्तानुबन्धी माया का बन्ध अवश्य होता है।

२४३. जिन्हें भोग भोगने के भाव हैं वे पाप के बन्धक हैं। पुण्य के उदय से भोग तो बिना माँगे ही मिल जाते हैं। भोग की माँग जीव को सम्यग्दर्शन से दूर ही रखती है।

२४४. यदि हमें अपना कल्याण करना है तो हमें अपने परिणामों को धर्म के अनुसार बदलना होगा, न कि औरों के।

२४५. इच्छा ही संसार का कारण है। इच्छापूर्ति सुख तो देती नहीं बल्कि अनन्त इच्छाओं के रूप में अनन्त दुःख ले आती है।

२४६. हमें यह तो पता नहीं कि हम किस पल इस भव से विदा ले लेंगे। फिर भी हम मौज मनाने की सोच रहे हैं। यह मूर्खता नहीं तो क्या है?

२४७. जिसे पाप छोड़ने योग्य लगता ही नहीं उसका मोक्ष मार्ग में प्रवेश असम्भव है।

२४८. शरीर के प्रति ममत्व यानी शरीर को मैं मानना सबसे बड़ा पाप है, इसी का नाम मिथ्यात्व है।

२४९. अनादि के विपरीत संस्कारों का फल है मिथ्यात्व।

www.jayeshsheth.com

२५०. मुझे क्या रुचता है? वही मेरी योग्यता का प्रमाण है।

२५१. इच्छा संसार का मूल है और इच्छा का मूल मोह और मिथ्यात्व है।

२५२. अपशब्द अपने भीतर के रोष को ही दर्शाते हैं।

२५३. असफलता मे दुःखी नहीं होना, यह सही समझ का फल है।

२५४. अगर दिल में कटुता है तो वह वाणी में सहज ही दिखती है।

२५५. मुक्तिमार्ग उन्हें प्राप्त होता है जिन्हें पूरे विश्व में आत्मा से अधिक मूल्यवान और उत्कृष्ट अन्य कुछ लगता ही नहीं।

२५६. जिसे पर में सुख बुद्धि है उसे मुक्तिमार्ग नहीं मिलता।

२५७. हमारे वर्तमान के परिणाम ही हमारे भविष्य के सुख-दुःख तय करते हैं।

२५८. परद्रव्य से मान का पोषण या दीनता ही हमारे अनन्त संसार का कारण है।

२५९. अज्ञानी ने अनादि से क्रोध-मान-माया-लोभ के पीछे ही अपना जीवन गँवाया है।

२६०. जिसे भगवान ही बनना है और कुछ भी नहीं, उसकी भवशृंखला का अन्त निकट है।

२६१. शास्त्र अनुसार स्वयं को अनुशासन में रखनेवाला साधक ही अपनी साधना का सच्चा फल प्राप्तकर सकता है।

२६२. शास्त्रों में साधना हेतु विनय को विशेष महत्व दिया गया है। इसलिये सभी साधकों को अहंकार छोड़कर स्वयं को विनयशील बनाना चाहिये।

२६३. शास्त्रों के सम्यक् अभ्यास का फल तत्त्वार्थश्रद्धान है। तत्त्वार्थश्रद्धान उसे कहते हैं जब हमें आत्मा के अलावा कुछ भी पसन्द न हो।

२६४. शास्त्र स्वाध्याय का एकमेव उद्देश्य तत्त्व का भावभासन होना चाहिये। न कि कोरी विद्वत्ता बनाने का और न ही विद्वत्ता से कमाई करने का।

२६५. जिनके पास शास्त्रों से निर्णीत सम्यक् ज्ञान नहीं है उनसे धर्म के नाम पर लोग कुछ भी करवा सकते हैं।

२६६. सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का विनय ही हमें आत्मज्ञान की ओर ले जा सकता है।

२६७. सच्चे देव-शास्त्र-गुरु पहचानना अत्यन्त आवश्यक है। जो गुरु दूसरों के प्रति द्वेष या रोष कराते हों वे सत्य धर्म नहीं सिखा सकते।

२६८. बिना किसी गुरु पर भरोसा किये हम कुछ नहींकर पाते। इसलिये जब हमें सच्चे गुरु की प्राप्ति होती है और उनपर भरोसा होता है तब आत्मलाभ हुए बिना नहीं रहता। यही सच्चे गुरु की पहचान है।

२६९. जो कम-से-कम एक अन्तर्मुहूर्त में एक बार अपनी आत्मा का अनुभव करते हों उन्हें शास्त्रों में छठवाँ-सातवाँ गुणस्थानकवर्ती बताया है।

२७०. हम तत्त्व का अभ्यास तो करते हैं, उसे रटते भी हैं। परन्तु तत्त्व का गहन चिन्तन-मनन करके उसका भावभासन करना चाहिये।

२७१. अपना अस्तित्व अनादि से है मगर अभी जो मनुष्य जन्म इत्यादि संयोग मिले हैं वे बार-बार मिलना सम्भव नहीं है। इसलिये उनका उचित उपयोग करना चाहिये।

२७२. भगवान ने हमें धर्म परीक्षाकर के ग्रहण करने को कहा है। जन्म से हमें जो धर्म मिला है या फिर जिस धर्म में भीड़ ज़्यादा हो उसे आँखें मींचकर ग्रहण करने को नहीं कहा है।

२७३. जब हम नाम के लिये दान देते हैं तब उससे पुण्य के साथ पाप भी बँधते हैं । पुण्य भी कमज़ोर ही बँधते हैं।

२७४. हमें सच्ची बातें अपने से छोटों से भी अवश्य सीखनी चाहिये। उसमें हमें अपना अहंकार बीच में नहीं लाना चाहिये।

२७५. जब हम बात-बात पर ग़ुस्सा करने लगते हैं तब हम समस्या का समाधान नहीं ढूँढ पाते बल्कि हम समस्या को ज़्यादा पेचीदा बना देते हैं।

२७६. हमें अपने कार्यों के पीछे की अपनी नियत जाँचते रहना है। अगर हमारी नियत ख़राब है तो हमें समझना है कि अपनी नियति भी ख़राब है।

२७७. अगर हम अपने कर्त्तव्य में कामचोरी या बेईमानी करते हैं तो हमें सत्य धर्म मिलने की सम्भावना बहुत ही क्षीण है।

२७८. अनादिकाल से हमने मोहवश अनन्त दु:ख भोगे हैं। अब यह सिलसिला कब तक चालू रखना है यह सोचना चाहिये।

२७९. बच्चों के प्रति अपना पहला दायित्व उन्हें अच्छे संस्कार देना है जिससे वे अपना भविष्य अच्छा बना सकें।

२८०. अपने साथ घटित हो रही हर घटना को सकारात्मक ढंग से लेकर हम आर्तध्यान (पाप) से बच सकते हैं।

२८१. जो लोग अपने साथ घटित हो रही हर घटना को सकारात्मक रूप से नहीं लेते वे अपने वर्तमान और भविष्य दोनों ही बर्बादकर लेते हैं।

२८२. जिसे वीतरागी होना है उसे सबसे पहले तीव्र राग-द्वेश को छोड़ना पड़ेगा।

२८३. लोभ कषाय सब कषायों में शक्तिमान है क्योंकि वह आत्मज्ञानी को भी अशान्तकर सकता है।

२८४. हमने अनादिकाल से अपने को देहरूप ही माना है। देह के नाम को ही अपना नाम माना है। इसलिये हम दु:खी हैं। अब सच्ची अनुभूति कब करनी है यह सोचना चाहिये।

२८५. हम सही या ग़लत जैसा भी वस्तुस्वरूप का निर्णय करते हैं, वैसा ही भावभासन हमें होता है।

२८६. जब तत्त्व का सम्यक् निर्णय होगा तब पर्याय में सुधार अपने-आप आ जाता है। यही सहज योग है।

२८७. पाँच समवायों में एकमात्र पुरुषार्थ ही अपने हाथ में है। अगर हम निमित्त या नियति या काल की राह देखकर वर्तमान गँवायेंगे तो आत्मज्ञान प्राप्त होना मुश्किल है।

२८८. अनादिकाल से हमने अपने को आत्मा नहीं मानकर ही अनन्त दु:ख झेले हैं। अगर आगे भी हमने अपने को आत्मा नहीं माना तो अपना हम हित-अहित न समझने से अनन्त दु:ख ही पायेंगे।

२८९. जो लोग दृष्टि (सम्यग्दर्शन) के विषयरूप पर्यायरहित द्रव्य को पाना चाहते हैं वे पहले ही पर्याय को याद करके अपना रास्ता रोक लेते हैं ।

२९०. तत्त्व के ग़लत निर्णय के रहते आत्मज्ञान कभी नहीं हो सकता। इसलिये सभी को तत्त्व के सम्यक् निर्णय के लिये ही प्रयास करना चाहिये।

२९१. जिसे सुखी होना है उसकी दृष्टि अपने आत्मस्वभाव पर होनी ज़रूरी है। अन्यथा जैसे हम अनादि से भटक रहे हैं और दु:ख झेल रहे हैं उस परिस्थिति को रोका नहीं जा सकता।

२९२. आत्मज्ञान चिन्ता करने से नहीं मिलनेवाला। वह तो आत्मचिन्तन करने से अपने-आप मिलनेवाला है। यही सहज योग है।

२९३. जब हम आत्मचिन्तन करते हैं तब हम अपने-आप ही आत्मज्ञान के नज़दीक़ जाते हैं। जो लोग आत्मज्ञान न मिलने से चिन्तित रहते हैं उन्हें आर्तध्यान (पाप) होता है। आगे चलकर वे लोग हताश-निराश होकर आत्मज्ञान के लिये अपने सारे प्रयत्न ही छोड़ देते हैं।

२९४. जब आत्मचिन्तन उत्साह के साथ किया जाये तब आत्मज्ञान की प्राप्ति निश्चित है। इसकेलिये मुझे क्या पसन्द है? यह जाँचते रहना चाहिये।

२९५. पहले हमें भोग का आकर्षण होता है, फिर हम उसे प्राप्त करने के लिये प्रयास करते हैं । प्रयास करने पर सभी को भोग प्राप्त होंगे यह तय नहीं लेकिन उन भोगों के प्रति आकर्षण से हमें पाप का बन्ध अवश्य होता है। इसलिये पहले हमें भोगों के प्रति आकर्षण को ख़त्म करने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

२९६. हमें अपना कर्तव्य निभाते समय अहंकार से बचना है। अगर हमें उस वक़्त अहंकार होता है तो हमें पाप का अधिक बन्ध होता है।

२९७. यदि हम पुण्योदय से मिले अच्छे संयोगों को अपने कर्तृत्वपन से जोड़कर अहंकार करते हैं तो हमें पाप का अधिक बन्ध होता है। भविष्य में उस पाप के उदय में हम दु:खी हो सकते हैं। अहंकार से अपना वर्तमान भी बिगड़ता है क्योंकि उससे अपने पुराने पाप कर्म भी अधिक दु:खदायी बन जाते हैं।

२९८. जब तक हम अपने आपको आत्मा नहीं मानते तब तक हम अपने यानी आत्मा के हित का विचार कैसेकर सकते हैं? नहींकर सकते क्योंकि तब तक हमें अपने स्वहित का पता ही नहीं होता।

२९९. हमें दु:खी, रोगी, पापी, चोर इत्यादि के प्रति एकमात्र करुणा भाव ही रखना चाहिये। अन्यथा हमें पाप का अधिक बन्ध होता है। उनके प्रति रोष या द्वेष करने से हमारा वर्तमान भी बिगड़ता है।

३००. जिसे अपनी आत्मा का हित पता है वह इस लोक में शान्त-सुखी-सहनशील है और उसका भविष्य भी उज्ज्वल है।

www.jayeshsheth.com

३०१. जिसे केवल मौज-मस्ती की ज़िन्दगी चाहिये और इस संसार का भय नहीं लगा है, उसे संसार से मुक्ति मिलना कठिन है।

३०२. जिसे एक या दो अच्छे भव चाहिये और इस संसार का भय नहीं लगा है, उसे संसार से मुक्ति मिलनी कठिन है।

३०३. जिसे सत्य धर्म की प्राप्ति नहीं हुई हो उसे इस जीवन में पाप कर्मों का बन्ध अधिक होता है। इससे उनका भविष्य भी दु:खमय हो सकता है।

३०४. जब हम सत्य धर्म की प्राप्ति करके स्वयं सुखी हो जाते हैं तभी हम किसी और को सुखी होने का मार्ग बता सकते हैं। क्योंकि जो हमारे पास होता है वही तो हम दूसरों को दे सकते हैं।

३०५. प्राय: हमारा पूरा पुरुषार्थ हमारी रूचि के अनुसार ही होता है। इसलिये जब तक हमारी रुचि संसार में है तब तक हमें धर्म में सफलता मिलनी कठिन है।

३०६. जब तक हमारा एकत्व शरीर से है तब तक हमारा कल्याण होना मुश्किल है।

३०७. सत्य धर्म की प्राप्ति के लिये हमें अपने मोह को परास्त करना है। हमें अन्य लोगों को अथवा अन्य धर्मों को परास्त नहीं करना है।

३०८. यदि हम अन्य लोगों के प्रति अथवा अन्य धर्मों के प्रति द्वेष भाव रखते हैं तो हमारे वर्तमान और भविष्य दोनों बिगड़ सकते हैं।

३०९. लोग कर्मों से लड़ने की बात करते हैं । उसका सही अर्थ यह है कि कर्मोदय के वक़्त यदि अपने भाव बिगड़ते हैं तो सम्यक् समझ के द्वारा उन्हें बिगड़ने से बचाना है। कर्मों से लड़ने का कारगर नुस्ख़ा यही है क्योंकि हमें कर्म तो दिखते नहीं लेकिन अपने भाव ज़रूर अनुभव में आते हैं ।

३१०. हमने जो भी अच्छे या बुरे भाव पूर्व में किये थे उन भावों के निमित्त से हमसे अच्छे या बुरे कर्म जुड़े थे। उन अच्छे या बुरे कर्मों के उदय से हमें अच्छे या बुरे संयोग प्राप्त होते हैं। उन अच्छे या बुरे संयोगों के वक़्त हम अच्छे या बुरे भाव करने में स्वतन्त्र हैं। हम अपने भाव सँवारकर उन कर्मों से मुक्त भी हो सकते हैं। उसके लिये हमें कर्मों से लड़ना नहीं है बल्कि सम्यक् समझ से अपने भावों को सँवारना है।

३११. जब हमें पाप के उदय से बुरे संयोग प्राप्त होते हैं तब हमें दु:खी न होकर या रोष-द्वेष न करके बारह भावना और चार भावना के द्वारा सम्यक् समझ प्राप्त करके अपनी प्रतिक्रिया संयमित रखनी है।

३१२. कब कौन से कर्म उदय में आ जायेंगे यह हमें पता नहीं। इसलिये हमें बारह भावना और चार भावना की सम्यक् समझ प्राप्त करके अपनी मन:स्थिति को आत्म-केन्द्रित बनाकर रखनी है, जिससे हम समय आने पर अपनी प्रतिक्रिया को संयमित रख सकें और आत्मज्ञान तथा मुक्ति की ओर बढ़ सकें।

३१३. धर्म क्या करता है? धर्म हमारे वर्तमान और भविष्य, दोनों सँवारता है; दोनों को ख़ुशहाल बनाता है। कभी-कभी धर्मनिष्ठ व्यक्तियों को भी पापोदय से परेशानी-दु:ख आते हैं मगर वे भी कम होकर आते हैं यानी सूली की सज़ा सूई की चुभन से टल जाती है।

३१४. धर्म हमें क्या सिखाता है? धर्म हमें सदा ख़ुश रहने का तरीक़ा सिखाता है।

३१५. क्या धर्मनिष्ठ व्यक्ति रोग का प्रतिकार करते हैं? धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपनी अवस्था के अनुसार रोग का प्रतिकार करते हैं क्योंकि उन्हें पता है कि इस जीवन (शरीर) का मूल्य क्या है। एकान्त मान्यतावाले लोग यह बात नहीं समझ पाते इसलिये वे धर्मनिष्ठ व्यक्ति की निन्दा करके अनन्त कर्म बाँधते हैं ।

३१६. एकान्त मान्यतावाले लोग रोग को कर्म, नियति आदि पाँच समवायों में से किसी एक ही समवाय का फल मानते हैं और लापरवाह रहते हैं। वैसी एकान्त ग़लत धारणा से ही वे यथायोग्य सावधानी रखनेवाले अनेकान्त के जानकार की भी निन्दा करके अनन्त पाप बाँधते हैं।

३१७. सभी जीवों में अनादि से मोह का नशा होता है। जो उस नशे से मुक्त हो पाते हैं वही संसार से मुक्त हो पाते हैं। सादि-अनन्त सुखी बन जाते हैं ।

३१८. सभी जीव समान हैं इसलिये जब हम किसी को छोटा समझकर अपमानित करते हैं तब हम अपने लिये ही दु:ख को आमन्त्रण देते हैं।

३१९. हमें सभी जीवों के साथ मैत्री, प्रमोद, करुणा, माध्यस्थ्यभाव और धन्यवाद! स्वागतम्! (Thank you! Welcome!) को ध्यान में रखकर ही व्यवहार करना है।

३२०. प्रबुद्ध लोग कथन जिस अपेक्षा (नय) से किया गया हो उसे ठीक उसी अपेक्षा से समझ लेते हैं। मगर जिन्हें किसी नय-विशेष का आग्रह होता है वे उस कथन को ग़लत समझते हैं ।

३२१. जिन्हें किसी नय-विशेष का आग्रह होता है वे एकान्ती (एकान्त मान्यतावाले) होते हैं । उन्हें हर उस कथन पर आपत्ति होती है जो अन्य नय-विशेष पर आधारित होता है। इसलिये जिसे सत्य धर्म पाना है उसे किसी भी एक नय-विशेष का आग्रह नहीं रखना चाहिये।

www.jayeshsheth.com

३२२. सत्य धर्म नयातीत होता है क्योंकि स्वात्मानुभूति नयातीत होती है। इसलिये जिन्होंने सत्य धर्म पा लिया है वे किसी भी नय के एकान्त पक्षपाती नहीं होते। वे हर कथन को यथायोग्य रीति से समझ लेते हैं। इसलिये वे ही शास्त्र का सही अर्थघटनकर सकते हैं।

३२३. कोई भी नय का अभिनिवेश हमें शास्त्र का सही अर्थघटन करने से रोकता है। इसलिये हर साधक के लिये नय का यथार्थ रूप समझना नितान्त आवश्यक है।

३२४. ज़्यादातर सम्प्रदाय किसी एक नय के अभिनिवेश को ही आधार मानकर फलते-फूलते देखे जाते हैं ।

३२५. हमें पुण्योदय से जो भी धन प्राप्त होता है उसे अगर हम यथेच्छ भोगों में लगाते हैं तो हम नया पाप बाँधते हैं। इसलिये उस धन को जीवनावश्यक आवश्यकताओं के अलावा दान, परोपकार इत्यादि में भी लगाना चाहिये।

३२६. जब हम अपने नाम के लिये कोई भी अच्छा काम करते हैं तब हम पुण्य कम और पाप ज़्यादा बाँधते हैं। इसलिये हमें हर अच्छा काम बिना किसी अपेक्षा के करना चाहिये।

३२७. हमें भगवान की पूजा उन्हें प्रसन्न करने के लिये नहीं बल्कि उनके द्वारा बताये कल्याण-मार्ग के प्रति अहोभाव से करनी है।

३२८. कई लोग समस्या का समाधान नहीं मिलने पर निराश होकर आत्महत्या करने की हद तक मायूस हो जाते हैं। मगर जब वही लोग आत्मा के अस्तित्व और मोक्ष को समझ लेते हैं तब वे आनन्दित हो उठते हैं और उन्हें कोई समस्या परेशान नहीं करती।

३२९. जब हम अपने धन के बल पर धर्मस्थान में अधिकार/धौंस जमाना शुरुकर देते हैं तब हम मन्दिर जाकर भी पुण्य कम और पाप ज़्यादा बाँधते हैं।

३३०. जब हम अपने क्षायोपशमिक ज्ञान से धर्मस्थान में अधिकार/धौंस जमाना शुरुकर देते हैं तब हम मन्दिर जाकर भी पुण्य कम और पाप ज़्यादा बाँधते हैं।

३३१. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें झूठ बोलकर दूसरों को छलने के भाव हैं तब जल्द ही बारह भावना से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

३३२. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें धर्म के अलावा अन्य किसी भी कारण से देह पुष्टि का भाव है तब जल्द ही बारह भावना से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

www.jayeshsheth.com

३३३. यदि अपने भाव जाँचने पर पता चले कि हमें धर्म के अलावा अन्य किसी भी कारण से विश्व पर्यटन का भाव है तब जल्द ही बारह भावना से उसका इलाज करना चाहिये अन्यथा वही भाव अपने अनन्त भवों के यानी अनन्त दुःखों के प्रणेता बन जायेंगे।

३३४. पापी को धिक्कारने से हम बहुत पाप कर्म बाँधते हैं। इसलिये पापी के प्रति धिक्कार-भाव नहीं करुणा-भाव रखना है। और उस पाप से जो सीख लेनी है वह हमें 'सम्यग्दर्शन की विधि' के चौबीसवें प्रकरण में बताये गये धन्यवाद! स्वागतम्! (Thank you! Welcome!) को पढ़ने पर मिलेगी।

३३५. मैं यह शरीर नहीं हूँ। मैं तो जानने-देखनेवाली आत्मा हूँ। मृत्यु के समय जब मैं शरीर से निकल जाता हूँ तब यह शरीर का जानने-देखने का कार्य थम जाता है। और तब इस शरीर को मृत देह कहा जाता है। उसे कोई घर में नहीं रखता, उसे जल्द ही उसके नियत स्थान (श्मशान, क़ब्रिस्तान, इत्यादि) पहुँचा दिया जाता है।

३३६. मुझे जानने-देखनेवाली आत्मा से ही ममत्व (मैंपन) रखना है। वही स्व-तत्त्व है, वही मेरी असलियत है। उसी में मेरा कल्याण निहित है।

३३७. जगत में अनादि से भय का व्यापार चल रहा है। 'भय बिनु होइ न प्रीति' यह कहावत सत्य ही दर्शाती है। जिसे धर्म नहीं अपितु सुखशीलता ही पसन्द हो उसे भी दुःख के डर से करना तो धर्म ही पड़ेगा, ऐसा है सत्य का समीकरण।

३३८. अगर कोई दुःख के डर से या किसी के दबाव में आकर धर्म करता है तो वह ज़्यादा दिन नहीं टिकता। लेकिन जब कोई सत्य धर्म की यथार्थ समझसहित धर्म करता है तब वह निश्चित तौर पर मोक्षमार्ग (अनन्त सुख) प्राप्तकर लेता है।

३३९. हम सांसारिक सुख के लिये भी जो धर्मक्रियाएँ करते हैं' वे भी यदि भावप्रेरित सत्य धर्म के अनुकूल होंगी तो वही क्रियाएँ अनन्त फलदायी बन जाती हैं।

३४०. हमारी हर सांसारिक उलझन का उत्तर और समाधान सत्य धर्म में है। हमें उसे ढूँढने का तरीक़ा सीखना चाहिये।

३४१. हम जब अपनी समस्याओं को लेकर चिन्ता करते हैं तब हमें नियम से आर्तध्यान या रौद्रध्यान होता है। लेकिन उन्हीं समस्याओं को लेकर जब हम सत्य धर्म के अनुकूल चिन्तन करते हैं तब हमें नियम से धर्मध्यान होता है। यह कमाल सत्य धर्म को समझने पर ही घटित होता है अन्यथा नहीं।

www.jayeshsheth.com

३४२. जब हम अच्छे वस्त्र और अलंकार पहनकर ख़ुश होते हैं तब यह भी याद रखना है कि हमें अपनी आत्मा को भी अच्छे गुण और सम्यग्दर्शन से अलंकृत करना है।

३४३. लोग हमेशा कोशिश करते हैं कि वे ख़ूबसूरत दिखें। वैसी ही कोशिश उन्हें अपने आप को यानी अपनी आत्मा को गुण और सम्यग्दर्शन से ख़ूबसूरत बनाने के लिये करनी चाहिये।

३४४. जब कोई हमें लाठी से मारता है तब हम उस मारनेवाले से लड़ते हैं, न कि लाठी से। वैसे ही जब हमें कोई दु:ख देता है तब हमें अपने भावों (कर्मों) से लड़ना है, न कि दु:ख देनेवाले से।

३४५. सरल जीव के लिये सत्य धर्म के अनुकूल अपने आप को बदलना आसान होता है लेकिन वक्र और जड़ जीव के लिये वह प्राय: नामुमकिन ही होता है।

३४६. सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये जीव को सबसे पहले अपनी समझ को सम्यक् बनाना चाहिये।

३४७. सरल जीव अपना ग़ुरूर छोड़कर सम्यक् समझ आसानी से बना सकता है।

३४८. जिस जीव के राग-द्वेष मन्द हो गये हों वह जीव आसानी से सम्यक् समझ बना सकता है।

३४९. सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये और समझ को सम्यक् बनाने के लिये सबसे पहले साधक को अपना ग़ुरूर छोड़कर अपने मिथ्यात्व को दृढ़ करनेवाले परिणामों का स्वरूप जाँचना चाहिये।

३५०. परिणामों के नियामक कारण पाँच समवाय हैं, जिन्हें आप तत्समय की योग्यता भी कह सकते हैं। लेकिन पाँचों समवायों में से अपने हाथ में केवल पुरुषार्थ ही है। इसलिये हमें हरदम अपना उचित पुरुषार्थ करते रहना आवश्यक है, बग़ैर पुरुषार्थ किये हम अपने परिणामों की ज़िम्मेदारी को तत्समय की योग्यता पर नहीं डाल सकते।

३५१. लोग जब अपने परिणामों की ज़िम्मेदारी तत्समय की योग्यता पर डाल देते हैं तब वे अपने पुरुषार्थ को गौण कर देते हैं। जबकि अपने हाथ में केवल पुरुषार्थ ही है। अपने उचित पुरुषार्थ के बाद जो भी घटता है वह तत्समय की योग्यता कहलाता है।

३५२. तत्समय-योग्यता की सच्ची समझ पुरुषार्थहीनता नहीं है। सम्यक् पुरुषार्थ करने के बाद जो होता है उसे स्वीकार करना ही तो तत्समय-योग्यता की सच्ची समझ है। तत्समय-योग्यता के बहाने अपना सम्यक् पुरुषार्थ छोड़कर उल्टा पुरुषार्थ करना अर्थात् संसार का पुरुषार्थ करना मिथ्यात्व है।

३५३. हम भगवान का जीवनचरित्र अच्छे से पढ़ते हैं, उसे ठीक से याद भी रखते हैं मगर बहुत कम लोग उनके मार्ग पर चलने का प्रयास करते हैं।

३५४. भगवान के उपदेश और जीवन से हमें बहुत कुछ सीखना चाहिये।

३५५. धन हमारे लिये आवश्यक हो सकता है लेकिन जब वह हमारा एकमात्र लक्ष्य बन जाता है तब हमारा भविष्य अन्धकारमय बनना तय हो जाता है।

३५६. अगर हम जगत के हर सही या ग़लत काम करके धन कमाना चाहते हैं तो हमारा भविष्य अन्धकारमय बनना तय हो जाता है।

३५७. जिसे लोग सुख समझते हैं वह सदैव आकुलतामय होता है। सच्चा सुख तो निराकुल होता है।

३५८. लोग जिस इन्द्रियजनित सुख को ही सुख समझते हैं, वह पराधीन होता है। सच्चा सुख तो स्वाधीन होता है।

३५९. अपूर्व आनन्द, शाश्वत सुख और चिर शान्ति के लिये सत्य धर्म के अलावा और कोई मार्ग नहीं है। अर्थात् ये सब सत्य धर्म के ही फल हैं।

३६०. निष्प्रयोजन जीवहिंसा हमें अन्धकारमय भविष्य देती है। अत: निष्प्रयोजन जीवहिंसा का त्याग अवश्य करना चाहिये।

३६१. हम सब जानते हैं कि पत्ते पर गिरी ओस की बूँद अत्यन्त क्षणिक होती है मगर यह नहीं समझ पाते कि हमारा जीवन भी उतना ही क्षणिक है। इसलिये हम अनादि से संसार में डूबे हुए हैं और मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाये।

३६२. संसार के ज़्यादातर जीवों को एक के बाद एक इच्छा, आकांक्षा, तलब इत्यादि होती रहती है जिससे वे संसार से मुक्त होने की बात कभी सोच ही नहीं पाते।

३६३. अज्ञानी क्रूर कर्म करते हुए नहीं डरते क्योंकि उसका क्या फल होगा यह वे नहीं जानते या फिर उस बात में उन्हें विश्वास ही नहीं।

३६४. जो साधक संसार का सच्चा स्वरूप जानता है वह अपने को संसार में डूबने से बचा सकता है।

३६५. हमने अनादि से विषयासक्ति के कारण इस संसार में अनन्त दु:ख सहे हैं। अब कब तक यह सिलसिला जारी रखना है? कृपया स्वंय पर दया करें।

३६६. हमने अनादि से क्रोध, मान, माया और लोभ के कारण इस संसार में अनन्त दु:ख सहे हैं। अब कब तक यह सिलसिला जारी रखना है? कृपया स्वंय पर दया करें।

www.jayeshsheth.com

३६७. हमने अनादि से विजातीय और सजातीय पात्रों से मोह के कारण इस संसार में अनन्त दु:ख सहे हैं। अब कब तक यह सिलसिला जारी रखना है? कृपया स्वंय पर दया करें।

३६८. जो ज्ञान और आत्मा के अविनाभावी सम्बन्ध को जानते हैं, वे आत्मज्ञानी बन सकते हैं।

३६९. उचित ध्येयरहित धर्मक्रियाएँ ज़्यादा देर नहीं टिकतीं। न ही वे जीव को सत्य धर्म की और ले जाती हैं।

३७०. उचित भावरहित धर्मक्रियाएँ ज़्यादा देर नहीं टिकतीं। न ही वे जीव को सत्य धर्म की और ले जाती हैं।

३७१. बग़ैर अपने पूर्वाग्रहों को छोड़े हम कभी भी सत्य धर्म को प्राप्त नहीं कर सकते।

३७२. सत्य धर्म यानी स्वात्मानुभूति। वही सत्य धर्म उत्कृष्ट मंगल है, उत्कृष्ट शरण है।

३७३. ज्ञानियों ने साधना करके आत्मप्राप्ति की है। वे जगत कल्याण हेतु अपनी साधना सार्वजनिक करते हैं। जिससे कि अनेक लोग अपना कल्याण कर सकें।

३७४. जब हम खाने को औषधरूप समझकर खाते हैं तब पाप का बन्ध कम और आत्मकल्याण ज़्यादा होता है। शरीर को साधन मानकर हम उसे खाना देकर स्वस्थ रखते हैं, जिससे हमारी आत्मसाधना में वह बिना व्यवधान के काम में आये।

३७५. नये कर्मों का बन्ध कैसे रुक सकता है? अर्थात् संवर कैसे हो सकता है? कर्म दिखते नहीं, इसलिये उन्हें रोक पाना सम्भव नहीं। लेकिन जब हम अपना उपयोग अपनी आत्मानुभूति में लगाते हैं तब कर्म की कई प्रकृतियों का बन्ध अपने-आप रुक जाता है। इससे यह तय होता है कि अगर हमें कर्म के बन्ध को रोकना है तो हमें ज़्यादा से ज़्यादा स्वात्मानुभूति में रहने का प्रयास करना चाहिये। इसी को संवर कहते हैं।

३७६. दु:खों से मुक्ति के लिये कर्मों को हटाना है। उसे निर्जरा भी कहते हैं। हमें कर्मों को कुछ नहीं करना है क्योंकि वे तो दिखते ही नहीं। जब हम अपना उपयोग अपनी आत्मानुभूति में लगाते हैं तब कर्म की कई प्रकृतियों की निर्जरा शुरु हो जाती है। इससे यह तय होता है कि अगर हमें कर्म की निर्जरा करनी है तो हमें ज़्यादा से ज़्यादा स्वात्मानुभूति में रहने का प्रयास करना चाहिये।

३७७. शास्त्रों में स्वाध्याय को कर्मों की निर्जरा हेतु अभ्यन्तर तप के रूप में दर्शाया गया है। ज़्यादातर लोग धर्मग्रन्थों के पठन-पाठन को स्वाध्याय समझते हैं। परन्तु स्वाध्याय का सही अर्थ है धर्मग्रन्थों को आईना बनाकर अपनी आत्मा का अनुभव करते हुए धर्मग्रन्थों में बताये गये गुणों को ग्रहण करना और अपने दोषों से नजात पाना। ऐसा स्वाध्याय सच्ची निर्जरा का कारण है।

www.jayeshsheth.com

३७८. शास्त्रों में ध्यान को कर्मों की निर्जरा हेतु अभ्यन्तर तप के रूप में दर्शाया गया है। ज़्यादातर लोग ध्यान का अर्थ आसन लगाकर, स्थिर बैठकर अपनी साँस या बिन्दु या क्रिस्टल ऐसे कोई भी आलम्बन पर ध्यान लगाना समझते परन्तु ध्यान का सही अर्थ है - सोते-जागते, चलते हुए या बैठकर, किसी भी मुद्रा में आत्मा को केन्द्र में रखकर और आत्मप्राप्ति के लिये कर्मविपाक, संसारस्वरूप, लोकस्वरूप, इत्यादि के बारे में चिन्तन करना या फिर अपनी आत्मा का अनुभव करते रहना और बीच-बीच में पूर्वोक्त चिन्तन करना। ऐसा ध्यान सच्ची निर्जरा का कारण है।

३७९. लोग कभी-कभी इन्द्रियों को दुश्मन के रूप में पेश करते हैं मगर सच्चा दुश्मन तो अपना मोहग्रस्त मन है जो उन इन्द्रिय-विषयों के प्रति मोहवश आकर्षित होकर हमें (आत्मा को) संसार में भटकाता है। इसलिये कह सकते हैं कि सच्चा दुश्मन मोह है, न कि इन्द्रियाँ।

३८०. जब कोई जीव सम्यग्दर्शन पाकर दूसरों को उसके लिये प्रोत्साहित करता है, मदद करता है तब वह सम्यग्दृष्टि जीव दूसरों पर अनन्त उपकार करता है क्योंकि स्वात्मानुभूति-रूपी सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद वह दूसरा जीव भी निश्चित ही अल्पकाल में ही सिद्धत्व को प्राप्त कर लेगा और सिद्धत्व तो ब्रह्माण्ड में सबसे बड़ी उपलब्धि है।

३८१. जब हम किसी लौकिक दृष्टि से सफल व्यक्ति की बात करते हैं, तब अधिकांश लोग उस व्यक्ति के समान सफल बनने की कामना करते हैं। ठीक वैसे ही, जब हम भगवान की स्तुति, प्रार्थना या पूजा करते हैं तब हमें उनके जैसा बनने का विचार करना चाहिये।

३८२. ज़्यादातर लोग नौ तत्त्वों के प्रति श्रद्धा को ही सम्यग्दर्शन समझते हैं लेकिन सही सम्यग्दर्शन तो स्वात्मानुभूति सहित ही होता है। स्वात्मानुभूति ही सत्य है, स्वात्मानुभूति ही सम्यग्दर्शन है, स्वात्मानुभूति ही सत्य धर्म है।

३८३. जब कोई जीव ब्रह्माण्ड के नियम (Universal Law) समझ लेता है तब वह हर हाल में ख़ुश रहना सीख जाता है। यदि कोई दु:ख आ भी जाये तो वह ज़्यादा देर तक दु:खी नहीं रहता।

३८४. हम अनादि से दु:ख झेलते आये हैं और जब तक अपने आप को पहचान नहीं लेते अर्थात् आत्मज्ञान नहीं कर लेते तब तक हमें दु:खी होने से कोई बचा नहीं सकता।

३८५. आत्मज्ञान पाने के लिये आत्मज्ञानी का विनय करना परम आवश्यक है। उस विनय से ज्ञानी का नहीं अपना भला होता है, उस विनय से अपने अहंकार का नाश होता है जिससे हम आत्मज्ञान के पात्र बनते हैं।

www.jayeshsheth.com

३८६. लोग भगवान की भक्ति के फल में उनसे कुछ न कुछ कामना या याचना करते हैं। परन्तु सही भक्ति कोई कामना या याचना के लिये नहीं बल्कि अपने आत्मकल्याण के लिये ही होती है।

३८७. इन्द्रिय विषयों की कामना संसार के मूल को हरा-भरा रखती है, उसे सूखने नहीं देती। जिससे हमें अत्यन्त अल्प भ्रामक सुख के बदले में अनन्तानन्तकाल का अनन्त दु:ख मिलता है।

३८८. लोग सहनशीलता बढ़ाने का प्रयास करते हैं लेकिन वह भी एक सीमा तक ही बढ़ती है। वह बोझ भी होती है। जो जीव धन्यवाद! स्वागतम्! (Thank you! Welcome!) समझ लेता है उसकी सहनशीलता अपने-आप ही बढ़ती जाती है। वह सहज होती है, बोझ नहीं।

३८९. सच्चे धर्म में धर्म के नाम पर आपस में झगड़े-फ़साद नहीं हुआ करते। यह सच्चे धर्म की पहचान है।

३९०. हमने अनादि से अपनी सोच बना रखी है कि बग़ैर क्रोध किये अपना काम नहीं होगा या अपनी बात सुनी नहीं जायेगी। हमें इस मानसिकता से बाहर निकलने का प्रयास करना चाहिये।

३९१. यदि हम यह सोच बनाये रखते हैं कि बग़ैर क्रोध किये अपना काम नहीं होगा या अपनी बात नहीं सुनी जायेगी तो हमारा संसार में अनन्त काल तक अनन्त दु:खी होना तय हैं।

३९२. यदि हम यह सोच बनाये रखते हैं कि बग़ैर क्रोध किये अपना काम नहीं होगा या अपनी बात नहीं सुनी जायेगी तब हम सम्यग्दर्शन (आत्मज्ञान) के योग्य बनने से वंचित रह जाते हैं।

३९३. जिसे इस संसार में ही सुख दिखता है और उससे मुक्त होने का भाव नहीं होता, उसका संसार में अनन्त काल तक अनन्त दु:खी होना तय है।

३९४. जिसे इस संसार में ही सुख दिखता है और उससे मुक्त होने का भाव नहीं होता, वह सम्यग्दर्शन (आत्मज्ञान) योग्य बन ही नहीं पाता। अत: उसका अनन्त काल तक संसार में भटकना तय है। अनन्त काल तक अनन्त दु:ख झेलना तय है।

३९५. ज़्यादातर लोगों में संसार से मुक्त होने का भाव ही दुर्लभ है। इसलिये वे सम्यग्दर्शन (आत्मज्ञान) के योग्य नहीं बन पाते। अत: उनका अनन्त काल तक संसार में भटकना तय है। अनन्तकाल तक अनन्त दु:ख झेलना तय है।

३९६. जब हम संसार के स्वरूप का शास्त्रों के आधार पर और अपने रोज़मर्रा के अनुभव से विश्लेषण करेंगे तब हमें संसार से मुक्त होने का भाव आ सकता है। इसी को वैराग्य कहते है। इसी को निर्वेद कहते हैं।

३९७. जब हमें संसार के स्वरूप का शास्त्रों के आधार पर और अपने रोज़मर्रा के अनुभव से विश्लेषण करने से संसार से मुक्त होने का भाव आता है। हमें मुक्ति (मोक्ष) के प्रति आकर्षण होता है। इसी को संवेग कहते हैं।

३९८. किसी साधक के मन में यह प्रश्न उठता है कि मुझे सम्यग्दर्शन (आत्मज्ञान) कब होगा? या अब मेरे मोक्ष जाने से पहले कितने भव शेष हैं, इत्यादि। उनसे हमारा निवेदन है कि आप बिना चिन्ता किये एकमात्र मोक्ष के लक्ष्य से चिन्तन करें और भरपूर पुरुषार्थ करें। इतना काफ़ी है। क्योंकि चिन्ता करने से तो आर्त्तध्यान (पाप) होता है और वह मोक्षमार्ग है भी नहीं।

३९९. यदि हम असावधान रहते हैं तो पुराने संस्कारों के कारण सहज ही संसार में फँस जायें ऐसे विचार आना स्वाभाविक है। इसलिये सदा सावधान रहकर एकमात्र मोक्ष के लक्ष्य से आत्मचिन्तन और आत्मानुभव करते रहना चाहिये।

४००. आत्मज्ञानी कर्मों के उदय को सहज रीति से ले सकते हैं। प्राय: (ज़्यादातर) कर्मों के उदय में आने पर वे दुःखी नहीं होते क्योंकि उन्हें दृढ़ विश्वास है कि यह उदय मेरे पुराने कर्मों का ही फल है। अर्थात् मैं ही उसके लिये ज़िम्मेदार हूँ।

४०१. जब भी कोई जीव सम्यग्दर्शन (आत्मज्ञान) पाना चाहता है उसे अपने क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि कषाय कम करने का प्रयास करना चाहिये क्योंकि जब तक हमारा मन शान्त नहीं होता हम सत्य-असत्य की सन्तुलित परीक्षा नहीं कर पाते और सत्य को प्राप्त नहीं कर पाते।

४०२. आत्मा कभी नहीं मरती और इस शरीर को छोड़ देने से हमारे कर्म समाप्त नहीं होते। आत्मा अमर होने से जब कोई अपने जीवन का अन्त करके यह समझता है कि मैंने अप्रिय संयोग और कर्मों से नजात पा ली तब वह अनजाने में ही अपने आप को छलता है। वे कर्म उसे अगले भव में भी भोगने पड़ते हैं। वैसे संयोग मिल ही जाते हैं और उस जीव में बार-बार अपने जीवन को अकाल में ही अन्त करने के गहरे संस्कार भी रोपित हो जाते हैं।

४०३. जब किसी को ऐसा लगता है कि मेरे साथ अन्याय हो रहा है या मुझसे ये संयोग सहन नहीं होते, तब उसे अन्य निम्न स्तर के जीवों की ओर देखना चाहिये। अन्य निम्न स्तर के जीवों की ओर देखने से यह पता चलेगा कि ओह! मैं तो इनसे ज़्यादा सुखी हूँ, इनकी तुलना में मेरा दु:ख कुछ भी नहीं, इत्यादि। इस तरह से हम निराशा (depression) से बच सकते हैं। जिसे दु:ख से स्थायी नजात पाना है उसे एकमात्र मोक्ष के लक्ष्य से इस असार संसार के बारे में चिन्तन करना चाहिये।

४०४. कोई भी जीव जब कुछ अच्छी वस्तु पाता है तब उसे सहज ही प्रभावना करने का भाव आता है मगर उसे यह ख़याल रखना है कि प्रभावना करने पर उसे किसी भी प्रकार का अभिमान का भाव नहीं आना चाहिये अन्यथा वह अभिमान उसके पतन का कारण बन सकता है।

४०५. जब हमें किसी के बारे में बुरे विचार आते हैं तब हमें युनिवर्सल लॉ (Universal Law) पढ़कर उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिये। अन्यथा उन बुरे विचारों से अपना ही भविष्य बिगड़ता है।

४०६. जब भी कोई जीव अपना नाम करने के लिये प्रभावना करने का विचार करता है तब उस जीव को पाप कर्मों का बन्ध होता है। इसलिये हमें इससे बचना चाहिये।

४०७. साधक को हर दिन अपनी विशुद्धि पिछले दिन की अपेक्षा अधिक करने का प्रयास करते रहना चाहिये क्योंकि अपने भाव कभी स्थिर नहीं रहते। इसलिये हमें बिना निराश हुए अपना पुरुषार्थ बढ़ाते रहना चाहिये।

४०८. हमारे मन में कुछ न कुछ सोच-विचार चलता रहता है, कभी-कभी हम वचन या काया का भी उपयोग करते हैं। इससे हम अच्छे या बुरे कर्म बाँधते रहते हैं। इसे आस्रव कहा जाता है।

४०९. साधना में आगे बढ़ते वक़्त साधक को पहले अशुभ कर्मबन्ध का त्याग होता है और आगे चलकर शुभ कर्मबन्ध का भी त्याग हो जाता है। इस तरह हमारे आस्रव का सम्पूर्ण निरोध होकर हमें सिद्धत्व प्राप्त होता है।

४१०. शुभ और अशुभ आस्रव दोनों ही बन्ध होने के कारण साधक के लिये दोनों हेय हैं। परन्तु विवेकदृष्टि से देखने पर जिसे दु:ख पसन्द नहीं है उसे सब से पहले अशुभ का त्याग करना चाहिये और अनन्त सुख के लिये एकमात्र मोक्ष के लक्ष्य से शुभ में रहना चाहिये।

४११. जब इस जीवन में हमारा अनन्तकाल तय होना है, तब हम ग़ाफ़िल कैसे रह सकते हैं? अर्थात् सभी को इस जीवन में सम्यग्दर्शन प्राप्त करके स्वयं को अनन्तकाल के दु:ख से बचाकर सादि-अनन्तकाल का सुख प्राप्त करना चाहिये।

४१२. इस जीवन में हमें अपने कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र के प्रति अपने उचित कर्तव्य का निर्वाह यथोचित रीति से करना चाहिये।

४१३. अपना कर्तव्य निभाते हुए हमें इस बात का भी ध्यान रखना है कि अपनी आत्म-विशुद्धि बढ़ती रहनी चाहिये। अन्यथा हमें संसार में डूबने से कोई नहीं रोक सकता।

www.jayeshsheth.com

४१४. हमें किसी के भी प्रति दुर्भावना नहीं रखनी चाहिये। अन्यथा उस दुर्भावना को अपने ही दुर्भाग्य में तब्दील होने से कोई नहीं रोक सकता।

४१५. हमें किसी के भी प्रति बुरे विचार नहीं करने चाहिये। अन्यथा उन बुरे विचारों को अपने ही दुर्भाग्य में तब्दील होने से कोई नहीं रोक सकता।

४१६. हमें कोई भी कार्य सिर्फ़ नामप्राप्ति के लिये ही नहीं करना चाहिये। अन्यथा उस नामप्राप्ति के लिये किये हुए कार्य को अपने ही दुर्भाग्य में तब्दील होने से कोई नहीं रोक सकता।

४१७. हमें अनादि से डर के संस्कार हैं। इसलिये हर गृहस्थ जीव को डर होता है, वह कम-ज़्यादा हो सकता है।

४१८. हमने जो दिया है वही हमें मिलता है। यह नियम होने से जिन्होंने भी पूर्व में दूसरों को डराया-धमकाया है, वे नियम से कई बार डराये-धमकाये जाते हैं।

४१९. डर या भय, भय-मोहनीय कर्मप्रकृति की वजह से होते हैं। दूसरों को डराने से हम भय-मोहनीय कर्म बाँधते हैं। इसलिये हमें दूसरों को डराना नहीं चाहिये।

४२०. नारक और तिर्यंच के भव में भय ज़्यादा होता है। इसलिये हमें पाप कर्मों से बचना चाहिये। और एकमात्र मोक्ष के लक्ष्य से पुण्य करना चाहिये।

४२१. जब हम जीवहिंसा का अंशत: भी प्रत्याख्यान करते हैं तब हम उन जीवों को अभय देते हैं। इसे अभयदान भी कहा जाता है, यह अभयदान उत्कृष्ट दान कहलाता है। इससे अपना भय सहज ही कम होता है।

४२२. जीवों को अभय देने से हमें अभय प्राप्त होता है। सर्वोत्कृष्ट अभय केवलज्ञान होने पर ही मिलता है। इसलिये हमें अपना पूरा पुरूषार्थ सम्यग्दर्शन (आत्मज्ञान) प्राप्त करके मुक्त होने के लिये ही करना चाहिये।

४२३. जिन जीवों को जानने में भावमन सहायक है वे छद्मस्थ कहलाते हैं। और जिन्हें भावमन की सहायता बग़ैर मात्र अपनी आत्मा से ज्ञान होता है, उन्हें केवली कहते हैं। उनके ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं।

४२४. जल्दबाज़ी हमेशा तकलीफ़ देती है। लोगों को जल्दी से आत्मानुभूति चाहिये होती है मगर उन्हें यह नहीं पता कि हर कार्य का योग्य कारण होता है। जो लोग सही कारण देंगे उन्हें आत्मानुभूति अपने

आप मिलनेवाली है। अर्थात् आत्मानुभूति जल्दबाज़ी से नहीं योग्य कारण देने से मिलती है। जल्दबाज़ी से तो आर्तध्यान यानी पाप का बन्ध होता है।

४२५. ज़्यादातर लोगों की दृष्टि पर्यायदृष्टि होती है। वे हर जीव और वस्तु को पर्यायदृष्टि से ही देखते हैं । इस कारण से वे उस जीव या वस्तु के त्रिकाल रूप से अनजान ही रह जाते हैं। त्रिकाल रूप जानने के लिये द्रव्यदृष्टि होनी आवश्यक है।

४२६. पर्यायदृष्टि से जीव चार गतियोंवाला जानने में आता है जबकि द्रव्यदृष्टि से हर जीव सिद्धसमान जानने में आता है। इस तरह द्रव्यदृष्टि रखने से हम अपना उत्थान भी कर सकते हैं और हर एक जीव के प्रति समता भाव भी रख सकते हैं ।

४२७. पर्यायदृष्टि से जीव दोषी जानने में आता है जबकि द्रव्यदृष्टि से हर जीव निर्दोष जानने में आता है। इस तरह द्रव्यदृष्टि रखने से हम अपना उत्थान भी कर सकते हैं और हर एक जीव के प्रति समता भाव भी रख सकते हैं।

४२८. अनुचित शर्त रखकर दिया गया कोई भी दान हमें पाप का बन्ध कराता है।

४२९. जब हम मन्दिर या धर्मस्थानक में अपना वर्चस्व बनाने के लिये दान देते हैं तब वह दान हमें अवश्य ही पाप का बन्ध कराता है।

४३०. हमारा भविष्य हमारी वर्तमान भावना के अनुरूप ही होता है। इसलिये हमें हर हाल में अच्छी भावना रखने का ही प्रयास करना चाहिये।

४३१. लोगों को लगता है कि धर्म के मार्ग पर चलना दुश्वार है मगर जब एक बार यह अहसास हो जाये कि धर्म के मार्ग के अलावा अन्य कोई भी मार्ग मुझे अनन्त दु:ख ही देनेवाला है तब उसी धर्म के मार्ग पर चलना सहज और आसान बन जाता है।

४३२. जब किसी के पाप का उदय आता है तब उसका जीना भी दुश्वार हो जाता है लेकिन धर्म के मार्ग पर चलने से नये पापकर्म कम बँधते हैं, इससे उसका मार्ग भी आसान हो जाता है।

४३३. धर्म के मार्ग पर चलते हुए किसी को अगर अपने पूर्वकृत पाप का उदय आ भी जाये तो वह अपनी सच्ची समझ की बदौलत उस दु:ख को भी आसानी से, बिना दु:खी हुए पार कर लेता है।

४३४. जब किसी को धर्म का मार्ग आसान और एकमात्र चलने योग्य मार्ग लगे, तब उन्हें यह समझना है कि वे जल्द ही भव को पार करानेवाला सम्यग्दर्शन (आत्मज्ञान) पा लेंगे।

www.jayeshsheth.com

४३५. सम्यग्दर्शन (आत्मज्ञान) चाटुकारिता से नहीं पाया जा सकता। हाँ, गुरु के विनय से अवश्य पाया जा सकता है। गुरु का असली विनय उनकी चाटुकारिता नहीं बल्कि उनके कहे पथ पर चलने की तत्परता है।

४३६. संसार में भी लोग समझते हैं कि धनिकों की चाटुकारिता करके हम धन कमा लेंगे मगर उन्हें यह नहीं पता कि धन, धनिकों की चाटुकारिता से नहीं बल्कि अपने पुण्य से मिलता है।

४३७. हम चाहते हैं कि सब हमारी इच्छा के अनुरूप हो। यह इच्छा ही हमारे लिये दु:ख का कारण बनती है क्योंकि अगर पुण्योदय से हमारी चाहत के अनुरूप हो भी गया तो उससे अपना कतृत्वभाव या अहंकार बढ़ता है जो कि भविष्य में हमारी आत्मा के (हमारे) लिये दु;ख का कारण बनने में सक्षम है। अगर पापोदय से अपनी चाहत से विपरीत घटित हो तो वह वर्तमान और भविष्य दोनों ही बिगाड़ने में सक्षम है।

४३८. हम अपनी इच्छानुसार सबको परिणमाना चाहते हैं यह हमारी सब से बड़ी ग़लतफ़हमी है क्योंकि सबका परिणमन अपने-अपने कर्म और पुरुषार्थ के अनुसार होता है, न कि हमारी इच्छानुसार।

४३९. हम सबसे ज़्यादा कर्म मन से बाँधते हैं । इसलिये हमें मन को मात देना सीखना चाहिये। उसके लिये हमारी किताब 'सम्यग्दर्शन की विधि' का २४वाँ प्रकरण हृदयंगम करना चाहिये।

४४०. ज़्यादातर लोग पर्यायदृष्टि/व्यवहार से ही त्रिकाली ध्रुवात्मा पाना चाहते हैं। व्यवहार भेद करने वाला होने से उन्हें त्रिकाली ध्रुवात्मा प्राप्त नहीं होती। उसके लिये हमारी किताब 'सम्यग्दर्शन की विधि' का ७वाँ प्रकरण हृदयंगम करना चाहिये।

४४१. पर्यायदृष्टि/व्यवहार से ही त्रिकाली ध्रुवात्मा पाने की चाह रखना यानी आत्मा में द्रव्य और पर्याय ऐसे वास्तविक भेद मानकर उनमें से द्रव्य को पाने की चाह करना। व्यवहार भेद करने से उन्हें त्रिकाली ध्रुवात्मा प्राप्त नहीं होती। उसका सत्य स्वरूप समझने के लिये हमारी किताब 'सम्यग्दर्शन की विधि' का ५वाँ प्रकरण हृदयंगम करना चाहिये।

४४२. पञ्चाध्यायी पूर्वार्ध के श्लोक २४७ में बताया है कि - पर्यायार्थिक नय से (पर्यायदृष्टि से) उत्पाद है, व्यय है तथा ध्रौव्य है परन्तु द्रव्यार्थिक नय से (द्रव्यदृष्टि से) न उत्पाद है, न व्यय है और न ही ध्रौव्य है। यानी एक सत् ही प्रकाशमान है। इसलिये जिसे पर्यायरहित मात्र ध्रुव ही चाहिये उसे पर्यायदृष्टि ही मानना चाहिये क्योंकि भेद को पर्यायार्थिक नय बताया है और अभेद को द्रव्यार्थिक नय बताया है। उसका सत्य स्वरूप समझने के लिये हमारी किताब 'सम्यग्दर्शन की विधि' का ८वाँ प्रकरण हृदयंगम करना चाहिये।

४४३. लोग आत्मा की ४७ शक्तियाँ, आत्मा के गुण और उनके कार्य, इत्यादि का रसपूर्वक वर्णन करके उसपर ध्यान भी लगाते हैं । ये सभी एक, अखण्ड, अभेद आत्मा के भेद होने के कारण व्यवहार हैं, पर्यायार्थिक नय (पर्यायदृष्टि) हैं । इसलिये इन सबके वर्णन पर लक्ष्य न रखकर हमें अपना लक्ष्य एकमात्र ज्ञायक के ऊपर ही रखना है जो कि एक, अखण्ड, अभेद है।

४४४. पर्यायदृष्टिवालों को बात-बात पर बुरा लग जाता है जबकि द्रव्यदृष्टिवालों को ऐसा नहीं लगता क्योंकि पर्यायदृष्टि व्यक्ति के लिये वर्तमान ही सब कुछ है जबकि द्रव्यदृष्टि व्यक्तियों के सामने वस्तु का त्रिकाल स्वरूप होता है। इसलिये वे वर्तमान में बात-बात पर बुरा नहीं लगाते।

४४५. हमारी अनादि की वासनाएँ हमें अपने साधना पथ से चलित करने में सक्षम होती हैं। इसलिये हमें साधना पथ पर चलते हुए हरदम चौकन्ना रहना चाहिये।

४४६. हमने अनादि से अपने अभिप्राय में बाह्य-सुख को ही सच्चा सुख माना है परन्तु जब अपनत्व शरीर से निकलकर आत्मा में होता है तभी सच्चे सुख का अनुभव होता है। वही सच्चा सुख है इस बात पर श्रद्धा होनी चाहिये।

४४७. ज़्यादातर लोग पुण्योदय में अहंकारी बन जाते हैं और पापोदय में खिन्न रहते हैं क्योंकि वे उसे अपने ही पुरुषार्थ का फल मानते हैं। वास्तव में पाप-पुण्य के उदय तो अपने पूर्वकृत कर्मों के फल हैं। इसलिये हमारा अधिकार पुरुषार्थ करने पर है, उसके फल पर नहीं क्योंकि उसका फल अपने पूर्वकृत कर्मों अनुसार होता है, न कि अपनी इच्छा के अनुसार।

४४८. आत्मज्ञान के लिये मन का शान्त और सन्तृप्त होना आवश्यक है क्योंकि स्थिर पानी में ही अपना प्रतिबिम्ब दिखता है।

४४९. जब हम थोड़ी देर किसी भी प्रकार की ध्यानमुद्रा में बैठकर शान्ति पा लेते हैं तब हमें यह जाँच करनी है कि ध्यान से बाहर आने के बाद भी हमारे मन की शान्ति बनी रहती है क्या? क्या हमारे क्रोध-मान-माया-लोभ कम हो रहे हैं? क्या हमारी इच्छाएँ कम हो रही हैं? अगर ऐसा नहीं हो रहा है तो हम अपने आप को छल रहे हैं।

४५०. ज़्यादातर लोगों की यही मान्यता है कि धन से सुख मिलता है। परन्तु वास्तव में ज़रूरत से ज़्यादा धन सुख न देकर उसको सम्भालने का और बढ़ाने का तनाव और लालसा देता है, जिसे सुख नहीं दु:ख ही समझना चाहिये।

४५१. ज़्यादातर लोगों की यही मान्यता है कि विषयसेवन से सुख मिलता है परन्तु वास्तव में विषयसेवन से उसी की माँग बार-बार प्रबल होती है जिससे आकुलतारूपी दु:ख होता है। उसे हम सुख कैसे कह सकते हैं?

www.jayeshsheth.com

४५२. कई लोगों की यह मान्यता है कि ग़ुस्सा करने से ही लोग काम ठीक से करते हैं परन्तु वास्तव में वे अपना काम अपने पूर्वकृत कर्म के अनुसार ही करते हैं। बल्कि ग़ुस्सा करने से वर्तमान में अपनी मनोदशा बिगड़ती है और पाप-कर्म का बन्ध होने से अपना भविष्य भी बिगड़ता है।

४५३. किसी भी प्रकार के डर का कारण भयमोहनीय कर्म होता है। हम जब किसी जीव को दु:ख देते हैं या उसे डराते-धमकाते हैं या उसे मारते हैं तब भयमोहनीय कर्म ज़्यादा मात्रा में बन्धते हैं। इसलिये जिसे भयमुक्त होना है उसे ऐसा बिलकुल नहीं करना चाहिये।

४५४. अपने शरीर से एकत्वबुद्धि (मिथ्यात्व) के कारण डर ज़्यादा लगता है क्योंकि वैसे जीव शरीर के नाश को अपना नाश समझते हैं। इसलिये जिसे भयमुक्त होना है उसे आत्मज्ञान प्राप्त कर मिथ्यात्व दूर करने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

४५५. अपने शरीर में एकत्वबुद्धि (मिथ्यात्व) के कारण ही हमें संसार में अनन्त दु:ख झेलने पड़ते हैं। इसलिये जिसे संसार के अनन्त दु:खों से डर लगता हो उसे आत्मज्ञान प्राप्त कर मिथ्यात्व दूर करने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

४५६. जो लोग मोहान्धकार में डूबे हुए हैं उन्हें सत्य धर्म जँचता ही नहीं।

४५७. कई लोग भगवान से प्रेमलक्षणा भक्ति करते देखे जाते हैं परन्तु सच्ची प्रेमलक्षणा भक्ति सभी जीवों के प्रति प्रेम रखना सिखाती है क्योंकि भगवान-स्वरूप आत्मा सभी जीवों में समान रूप से विराजमान है। यही मैत्री भावना है।

४५८. भगवान ने हमें मोक्ष का राजपथ बताया है। इसलिये भगवान का हमारे ऊपर अनन्त उपकार है। वर्तमान में उस राजपथ के बारे में बहुत मत-मतान्तर देखे जाते हैं। इस काल में भी जब कोई ज्ञानी हमें उस सच्चे राजपथ की पहचान करवाते हैं तब उन ज्ञानी का भी हमारे ऊपर अनन्त उपकार है।

४५९. जब कोई ज्ञानी हमें भगवान के बताये सच्चे राजपथ से अवगत कराते हैं तब यदि हमारे हृदय में अगर किसी मत, पन्थ, सम्प्रदाय या व्यक्ति के प्रति आग्रह या हठाग्रह हो तो हम उस सच्चे राजपथ को नहीं अपना सकेंगे। अनादि से अपने साथ यही होता आ रहा है इसलिये हम अभी तक इस संसार में भटक रहे हैं। अब आगे क्या करना है यह हमें सोचना चाहिये और सच्चे राजपथ की तलाश कर उस पथ पर चलना चाहिये।

४६०. भगवान के बताये सच्चे राजपथ को पाने के लिये हमें अपने-आप को उसके लायक बनाना आवश्यक है। उसके लिये सन्तोष, सरलता, सादगी, समता, सहिष्णुता, सहनशीलता, नम्रता, लघुता, विवेक जैसे गुण जीवन में होने अति आवश्यक हैं।

४६१. अगर कोई भी व्यक्ति पर से अपनत्व करेगा तो वह नियम से दु:खी होगा क्योंकि पर कभी भी अपना नहीं हो सकता। इसलिये वह नियम से उस जीव के लिये दु:ख का कारण ही बनेगा।

४६२. जब हम शास्त्रों का अभ्यास करके ज्ञान अर्जित करते हैं तब साथ में उस ज्ञान को अपने आचरण में लाने का विवेक भी परम आवश्यक है।

४६३. वर्तमान में द्रव्य-गुण-पर्याय के विषय में बहुत सारी ग़लतफ़हमियाँ चल रही हैं जिनके बारे में हमने अपनी किताब सम्यग्दर्शन की विधि में विस्तार से शास्त्राधारित विवरण दिया है। जिन्हें द्रव्य-गुण-पर्याय की सच्ची समझ बनानी हो उनसे अनुरोध है कि वे 'सम्यग्दर्शन की विधि' के चौथे से आठवें प्रकरणों को ध्यान से पढ़ें।

४६४. त्रिकाल टिकनेवाली वस्तु द्रव्य है। उसकी वर्तमान अवस्था उसकी पर्याय कहलाती है और द्रव्य की त्रिकाल विशेषताएँ उसके गुण कहलाते हैं।

४६५. अपेक्षा से जो द्रव्य है वही पर्याय है और जो पर्याय है वही द्रव्य है। इस कथन का हार्द समझने के लिये अनुरोध है कि आप 'सम्यग्दर्शन की विधि' के चौथे से आठवें प्रकरणों को ध्यान से पढ़ें।

४६६. दृष्टिभेद से भेद है। द्रव्यदृष्टि से जो द्रव्य है वही पर्यायदृष्टि से पर्याय है। इस कथन का हार्द समझने के लिये अनुरोध है कि आप 'सम्यग्दर्शन की विधि' के चौथे से आठवें प्रकरणों को ध्यान से पढ़ें।

४६७. अगर कोई द्रव्य और पर्याय में अपेक्षाकृत भेद न मानकर सर्वथा भेद मानते हों तो उन्हें अभेद द्रव्य की प्राप्ति नहीं होगी। और बग़ैर अभेद द्रव्य की प्राप्ति के सम्यग्दर्शन सम्भव नहीं है। इस कथन का हार्द समझने के लिये अनुरोध है कि आप 'सम्यग्दर्शन की विधि' के चौथे से आठवें प्रकरणों को ध्यान से पढ़ें।

४६८. पर्याय परमपारिणामिक भाव की ही बनी हुई है। अर्थात् पर्याय द्रव्य की ही बनी हुई है। इस कथन का हार्द समझने के लिये अनुरोध है कि आप 'सम्यग्दर्शन की विधि' के पन्द्रहवें प्रकरण को ध्यान से पढ़ें।

४६९. कई लोग वस्तु को एक सत् न मानते हुए द्रव्य-गुण-पर्याय को तीन सत् मानते हैं। यदि वे अपेक्षा से ऐसा मानते हों तो ठीक है लेकिन एकान्त से उसे तीन सत् मानना मिथ्यात्व है। इस कथन का हार्द समझने के लिये अनुरोध है कि आप 'सम्यग्दर्शन की विधि' के चौथे से आठवें प्रकरणों को ध्यान से पढ़ें।

४७०. जो लोग द्रव्य-सत्, गुण-सत् और पर्याय-सत् ऐसे तीन अलग-अलग सत् मानते हैं उन्हें अभेद द्रव्य की प्राप्ति नहीं होगी। और बग़ैर अभेद द्रव्य की प्राप्ति के सम्यग्दर्शन सम्भव नहीं है। इस कथन का हार्द समझने के लिये अनुरोध है कि आप 'सम्यग्दर्शन की विधि' के चौथे से आठवें प्रकरणों को ध्यान से पढ़ें।

४७१. वर्तमान-पर्यायरहित द्रव्य प्राप्त होना सम्भव हीं नहीं क्योंकि वर्तमान-पर्याय में ही पूर्ण द्रव्य छिपा है। इस कथन का हार्द समझने के लिये अनुरोध है कि आप 'सम्यग्दर्शन की विधि' के चौथे से आठवें प्रकरणों को ध्यान से पढ़ें।

४७२. पर्याय-निरपेक्ष द्रव्य प्राप्त होना सम्भव हीं नहीं क्योंकि द्रव्य सदैव पर्याय-सापेक्ष ही होता है न कि पर्याय-निरपेक्ष इस कथन का हार्द समझने के लिये अनुरोध है कि आप 'सम्यग्दर्शन की विधि' के चौथे से आठवें प्रकरणों को ध्यान से पढ़ें।

४७३. वर्तमान पर्याय में ही शुद्धात्मा छिपी हुई है। यह बात तभी समझ में आती है जब नय का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। इस कथन का हार्द समझने के लिये अनुरोध है कि आप 'सम्यग्दर्शन की विधि' के चौथे से आठवें प्रकरणों को ध्यान से पढ़ें।

४७४. जो लोग सत्य धर्म के सच्चे स्वरूप को समझते है, उन्हें अनेक प्रकार के भय से मुक्ति मिल जाती है।

४७५. किसी भी प्रकार के भय से पीड़ित व्यक्ति का वर्तमान तो बिगड़ता ही है, पापबन्ध के कारण उसका भविष्य भी बिगड़ता है।

४७६. कुछ बुरा होने की आशंका से भयभीत रहकर हम अपना बुरा होने से पहले ही दु:खी रहना प्रारम्भ कर देते हैं। जबकि अगर अपने पाप का उदय हो तब हम अपने साथ बुरा होना रोक ही नहीं सकते। इसलिये भयभीत न होकर सत्य धर्म पर चलना प्रारम्भ करना ही समझदारी है जिससे हम अपने पापों को हल्का बना सकें।

४७७. इस जगत के ज़्यादातर लोग मतलबी हैं। मगर उन्हें यह नहीं पता कि सभी को अपनी आत्मा के उन्नयन के लिये मतलबी होना है न कि शरीर के लिये।

४७८. जब हम अपनी आत्मा के उन्नयन के लिये मतलबी बन जाते हैं तब हम अवश्य ही शनैः शनैः जगत के प्रति निस्पृह होते जाते हैं। इससे अपना कल्याण निश्चित होता जाता है।

४७९. हमें जगत की बुराई से नाता तोड़ना है न कि बुरे लोगों को बुरा बताना है। आख़िरकार उनमें भी भगवान आत्मा विराजमान है। उनके प्रति करुणाभाव और माध्यस्थ्यभाव रखना है।

www.jayeshsheth.com

४८०. हमें भगवान की वाणी पर कितना विश्वास है यह हमारे दैनन्दिन व्यवहार से पता चलता है।

४८१. अपने विचार, वाणी और वर्तन भगवान के कहे अनुसार होने चाहिये। अगर नहीं हैं तो हमें उन्हें भगवान के कहे अनुसार ढालने का प्रयास करते रहना चाहिये।

४८२. हमें हर कार्य आत्मलक्ष्य से करना है न कि पर के लक्ष्य से क्योंकि पर के लक्ष्य से किया हुआ कार्य हमें अपनी आत्मा से दूर ले जाता है।

४८३. हमें यह ध्यान रखना है कि कोई भी कार्य करते समय अपनी आत्मा का लक्ष्य मौजूद रहे। अगर अत्यन्त आवश्यक न हो तो हमें अपनी आत्मा के लक्ष्य से भटकानेवाले कार्यों से दूर ही रहना चाहिये।

४८४. अगर अपना लक्ष्य आत्मप्राप्ति के अलावा कुछ और है तब अपना भविष्य दु:खमय होगा यह तय है।

४८५. सामान्यत: साधक एकमात्र मोक्ष के लक्ष्य से पहले अशुभ भाव को त्यागता है। आगे फिर शुद्ध भाव के लक्ष्य से शुभ भाव भी अपने आप छूट जाता है जब वह शुद्ध भाव में स्थित हो जाता है।

४८६. अगर किसी को शुद्ध भाव की प्राप्ति नहीं हुई है और वह शुभ भाव को त्यागकर अशुभ भाव में रहता है तब उसका भविष्य अवश्य ही अन्धकारमय है।

४८७. जब तक शुद्ध भाव में स्थिरता नहीं हो जाती तब तक एकमात्र शुद्ध भाव के लक्ष्य से अशुभ भाव को त्यागकर शुभ भाव में रहना चाहिये।

४८८. सत्य धर्म का सार शुद्ध भाव की प्राप्ति और शुद्ध भाव में स्थिरता करना ही है।

४८९. जो जीव पुण्य के उदय में बहककर हवा में उड़ने लगते हैं वे नियम से पापकर्म बाँधते हैं।

४९०. प्रयत्न तो हर कोई करता है लेकिन कामयाबी पुण्य के उदयवालों को ही मिलती है, यह हमें कभी भूलना नहीं चाहिये।

४९१. जब हम अपनी कामयाबी को अपनी होशियारी का फल समझते हैं तब नियम से घमण्ड आना तय है। अपनी कामयाबी को अपनी होशियारी तथा अपने भाग्य यानी अपने पुण्य के उदय का फल समझने से घमण्ड से बचा जा सकता है।

४९२. अगर अपने पुण्य का उदय न हो यानी अपने पाप का उदय हो तो हमारी सारी होशियारी धरी की धरी रह जाती है। वह हमें कामयाबी नहीं दिलाती।

www.jayeshsheth.com

४९३. होशियार होना बुरा नहीं है पर उसका घमण्ड करना ग़लत है। उससे पाप बँधते हैं।

४९४. जब तक हम बाहर सुख ढूँढते हैं तब तक सच्चा सुख मिलना कठिन है क्योंकि सच्चा सुख अपनी आत्मा में ही विद्यमान है, कहीं बाहर नहीं।

४९५. हमने अनादि से सुख को बाहर ही ढूँढा है। इसलिये अनादि से हम दु:खी हैं। अब कब बदलना है अपने आपको? इसी पर विचार करें।

४९६. जानना-देखना आत्मा की पहचान है। उससे आत्मा को पहचानकर उससे अपनत्व (मैंपन) करना चाहिये।

४९७. जानने-देखने वाली आत्मा से अपनत्व (मैंपन) करते ही आत्मानुभूति होती है। तब आत्मा के आनन्द स्वभाव का अनुभव होता है। उसे ही आत्मज्ञान कहते हैं, सम्यग्दर्शन कहते हैं।

४९८. बुज़ुर्गों को बोझ समझनेवाले यह क्यों नहीं समझते कि वे ख़ुद भी कभी बुज़ुर्ग बननेवाले हैं?

४९९. बुज़ुर्गों को बोझ न समझकर उनकी नि:स्वार्थ सेवा करने से कई पापों का नाश होता है और अच्छे पुण्य भी बँधते हैं। इसलिये सभी के लिये यही कर्तव्य है।

५००. जब हम सत्य धर्म के विरुद्ध सोचते हैं तब नियम से अपना भविष्य दु:खमय होना तय है।

www.jayeshsheth.com

प्रश्न–धर्म यानि क्या?

उत्तर–धर्म का सामान्य अर्थ सम्प्रदाय अनुसार करने/समझने में आता है, परन्तु धर्म का सच्चा अर्थ वस्तु का स्वभाव (गुण धर्म) वह धर्म है।

प्रश्न–आत्मा का स्वभाव (गुण धर्म) क्या है?

उत्तर–आत्मा का स्वभाव (गुण धर्म अर्थात् लक्षण) जानना-देखना है।

प्रश्न–आत्मा की पहिचान क्या? उसका अनुभव कैसे हो सकता है?

उत्तर–सर्व जनों को अपने भाव, ज्ञान, जगत इत्यादि जानने में आता ही है, किन्तु वे अपने को आत्मा नहीं मानकर, शरीर मानते हैं। यह मिथ्यात्व है। अगर हम अपने को शरीर मानें, तब आँख अच्छी होने पर भी मृत्यु के बाद उस आँख से दिखता नहीं, परन्तु वही आँखें अगर किसी प्रज्ञाचक्षु के शरीर में प्रत्यारोपण की जाए तो वह देख सकता है। इससे निश्चय किया जा सकता है कि जानने-देखनेवाला आत्मा मृत शरीर में से चला गया है, जबकि वैसा ही जानने-देखनेवाला आत्मा उस प्रज्ञाचक्षु के शरीर में मौजूद है, जिससे वह देख सकता है। इसी तरह जानने-देखनेवाले आत्मा की पहिचान करके आँखों से ज्ञेयों को देखता है वह ज्ञायक जानने-देखनेवाला आत्मा, वह मैं स्वयं हूँ, नहीं कि आँखें और वह मैं हूँ, सोऽहम्, वह ज्ञानमात्र स्वरूप ही मैं हूँ, ऐसा निश्चित करना अर्थात् मैं मात्र जानने-देखनेवाला ज्ञायक-ज्ञानमात्र शुद्धात्मा हूँ-ऐसी भावना भाना और वैसा ही अनुभवना। वही अनुभव/सम्यग्दर्शन की विधि है।

प्रश्न–सम्यग्दर्शन के लिए क्या योग्यता आवश्यक है?

उत्तर–सामान्यरूप से सज्जनता, सरलता, अन्याय-अनीति का त्याग, अभक्ष्य (माँस, मछली, मक्खन, शहद, कन्दमूल, रात्रिभोजन, अचार, पापड़, इत्यादि) का त्याग, सप्त महाव्यसन (जुआ, शराब, माँस, वेश्यागमन, चोरी, शिकार और परस्त्रीगमन अथवा परपुरुषगमन) का त्याग, भवभ्रमण का डर, संसार असार लगना, भव, रोग-समान लगना, स्व आत्मा के कल्याण की तीव्र इच्छा, बारह भावना का चिन्तवन, सर्व जीवों को मैत्री आदि चार भावना से ही देखना-समझना, तत्त्व का निर्णय करना और देव-गुरु-धर्म/शास्त्र का परम आदर आवश्यक है।

आध्यात्मिक प्रगति के लिये विज़िट करें
www.jayeshsheth.com

मैत्री भावना – सर्व जीवों के प्रति मैत्री चिन्तवन करना, मेरा कोई दुश्मन ही नहीं ऐसा चिन्तवन करना, सर्व जीवों का हित चाहना।

प्रमोद भावना – उपकारी तथा गुणी जीवों के प्रति, गुण के प्रति, वीतरागधर्म के प्रति प्रमोदभाव लाना।

करुणा भावना – अधर्मी जीवों के प्रति, विपरीत धर्मी जीवों के प्रति, अनार्य जीवों के प्रति करुणाभाव रखना।

मध्यस्थ भावना – विरोधियों के प्रति मध्यस्थभाव रखना।

- मुखपृष्ठ की समझ -

अपने जीवन में सम्यग्दर्शन का सूर्योदय हो और उसके फलरूप अव्याबाध सुखस्वरूप सिद्ध-अवस्था की प्राप्ति हो-यही भावना।

JSBN

ISBN

ISBN 978-93-344-1181-2

9 789334 369953